हम अपने देश के कर्तव्य का दुहरा विभाजन करते है। एक तो वह विभाग है, जिसे हम विद्यार्थी कहते है और दूसरा विभाग नागरिकों का है। जो विद्यार्थी हैं, वे आगे के नागरिक हैं। वैसे तो दोनों विभाग संमिश्र हैं, जुड़े हुए हैं। आज का विद्यार्थी कल का जिम्मेवार नागरिक बनता है और हम नागरिकों को भी विद्यार्थी समझते हैं। लोग समझते हैं कि इक्कीस साल की उम्र-वाले को मतदान का अधिकार मिल गया, तो वह नागरिक बन गया। पर वह विभाजन सर्वसामान्य सुलभता के लिए किया गया है। हमारे देश की सैकड़ो ऐसी मिसाले हैं कि छोटे छोटे बच्चो ने सारे देश का मार्ग-दर्शन किया। शंकराचार्य ने सुप्रसिद्ध शांकरभाष्य अपनी उम्र के सोलहवें साल मे लिखा। ऐसी कई मिसालें अपने देश में मौजूद हैं। इसलिए हम इस बात को कोई महत्त्व नहीं देते कि फलाने की उम्र कितनी है। विद्यार्थी को हम नागरिक के नाते ही देखना चाहते हैं ओर जो आज के नागरिक माने जाते हैं, उनको भी हम विद्यार्थी ही मानते हैं।

यावज्जीवन स्वाध्याय

आज की हालत मे बहुत-से नागरिक विद्याभ्यासविहीन दीखते हैं। माना गया है कि विद्याभ्यास का काल समाप्त होने पर, जब मनुष्य संसार का भार उठाता है, तब उसका अध्ययन-काल भी खतम होता है। यह बिलकुल गलत

विचार है और भारत की सभ्यता के खिलाफ भी है। भारत की सभ्यता कहती है कि मनुष्य को विद्याभ्यास, अध्ययन, आमरण करना चाहिए। गृहस्थों के कर्तव्य में भी यह एक विधान है कि उसे स्वाध्याय करते रहना चाहिए। इस आन्ध्र प्रदेश में जिस तैत्तिरीय उपनिषद् का ज्यादा अभ्यास है, उसमें भी यह कहा है कि अपने विविध कर्तव्य के साथ मनुष्य को स्वाध्याय करना चाहिए। भिन्न-भिन्न कर्तव्यों का उच्चारण करके, हरएक के साथ यह भी उच्चारण किया गया है : "स्वाध्यायप्रवचने च"। खास-कर स्वराज्य के बाद नागरिक यदि अध्ययन नहीं करते हैं, तो हम उसमें स्वराज्य के लिए खतरा समझते हैं। हम तो समझते हैं कि जिसे विद्यार्थी-दशा कहते हैं, वह तो जीवन का आरम्भमात्र है। जब विद्यार्थी को विद्याध्ययन स्वतन्त्र बुद्धि से करने की शक्ति प्राप्त होती है, तब हम उसे नागरिक समझते हैं। जब वह नाग-रिक अपनी विद्यार्थी-दशा खतम करता है और अध्ययन करने की शक्ति प्राप्त होने पर भी अध्ययन छोड़ता है, तो वैसी हालत होगी, जैसी किसीने द्रव्यार्जन की शक्ति पाकर द्रव्यार्जन ही छोड दिया हो। चलने की शक्ति प्राप्त होने पर किसीने चलना छोड दिया, तो क्या होगा ? उसी तरह जिसने अध्ययन-शक्ति प्राप्त होने पर भी अध्ययन छोड़ा हो, उसे हम क्या कहेंगे ?

इसलिए हम ऐसा प्रयत्न नहीं करते कि विद्यार्थी और नाग-रिक, दोनों को अलग किया जाय। फिर भी कर्तव्यों का विभा-जन हम ऐसा करते हैं कि आज के विद्यार्थी और नागरिकों का अपना-अपना एक कर्तव्य है। आज हम विद्यार्थियों के लिए कुछ बातें रखना चाहते हैं और कल नागरिकों को उनका कर्तव्य क्या है, इस बारे में अपना विचार रखेंगे। इस तरह दोहरे कर्तव्य-विभाजन का, कुल मिलाकर एक पूर्ण विचार रखेंगे।

विद्यार्थियों से मेरी एकरूपता

हमने देखा है कि हमारी जिस सभा मे विद्यार्थियों की संख्या ज्यादा-से-ज्यादा होती, वह सभा अत्यन्त शान्त रहती है। मुझे विद्यार्थियों का जो अनुभव हुआ, वह अद्भुत ही है। हिन्दुस्तान के विद्यार्थियो के लिए मेरे मन में बहुत प्रेम है। इसलिए विद्यार्थियों के सामने जब मैं बात करता हूँ, तब उनके साथ एकरूप होकर ही बात करता हूँ। जाहिर करना चाहता हूँ कि मैं और जो कुछ भी हूँ, सबसे पहले विद्यार्थी हूँ। मेरा अभ्यास आज तक जारी है, अध्ययन आज तक जारी है। सहज मिसाल देता हूँ। हमारी यात्रा में जापान के एक भाई थे। यात्रा में भी एक घण्टा देकर मैंने जापानी भाषा का अध्ययन किया। मुझे ऐसा कोई अनुभव नही आया है कि जब उम्र बढ़ती है, तो अभ्यास करने के लिए स्मरणशक्ति क्षीण होती है। मेरा अनुभव तो यह है कि जैसे-जैसे शरीर क्षीण होता गया, वैसे-वैसे स्मरण-शक्ति ज्यादा तीव्र हो रही है। अगर बचपन में कोई श्लोक दस बार पढ़कर ध्यान मे रहता था, तो अब केवल दो बार रटने से ही याद रहता है। क्योंकि अध्ययन का अभ्यास निरन्तर जारी रहा। बुद्ध भगवान् ने कहा था कि जैसे रोज स्नान करते हैं, तो शरीर स्वच्छ होता है, जैसे झाड़ू रोज लगाते हैं, तो घर स्वच्छ होता है, वैसे रोज अध्ययन करते हैं, तो मन स्वच्छ रहता है। अगर रोज स्नान नहीं करेंगे, तो शरीर स्वच्छ नहीं होगा। वैसे ही रोज के अध्ययन के अभाव में मन स्वच्छ नहीं रहेगा। इस कथन के अनुसार मेरा अभ्यास निरन्तर जारी रहा और मुझे उम्मीद है कि जिस दिन परमेश्वर मुझे ले जायगा, उस दिन भी मैं अध्ययन करके ही जाऊँगा। अध्ययनशीलता के कारण विद्यार्थियों के हृदय के साथ स्वाभाविक ही मैं एकरूपता महसूस करता हूँ।

चिन्तन-स्वातन्त्र्य की आवश्यकता

विद्यार्थियो का पहला कर्तव्य यह है कि वे अपना दिमाग अत्यन्त स्वतन्त्र रखे। परिपूर्ण स्वातन्त्र्य का अगर किसीको अधिकार है, तो वह सवसे ज्यादा विद्यार्थियों को है। विना श्रद्धा के विद्या नहीं मिलती। इसलिए श्रद्धा तो रखनी ही चाहिए, पर श्रद्धा के साथ-साथ वौद्धिक-स्वातन्त्र्य की भी उतनी ही आवश्यकता है। वहुत लोगो को लगता है कि श्रद्धा और वुद्धि अलग हैं, पर यह गलत विचार है। जैसे कान और ऑख अलग-अलग शक्तियॉ हैं और दोनो का आपस में विरोध नहीं है, उसी तरह श्रद्धा और वुद्धि की वात है। अगर श्रद्धा नहीं है, तो विद्या की प्राप्ति असम्भव है। माता वच्चे को चॉद दिखाती है और कहती है: "देखो, वेटा यह चॉद है।" अगर वच्चे की माता में श्रद्धा न रही और उसे शका होगी कि माता जो दिखा रही है, वह चॉद है या नहीं, यह कौन जाने। तव उसे ज्ञान नहीं होगा। इसलिए ज्ञान-प्राप्ति के लिए श्रद्धा एक वुनियादी चीज है। ज्ञान का आरम्भ ही श्रद्धा मे होता है। लेकिन ज्ञान की परिसमाप्ति वुद्धि में है। श्रद्धा से ज्ञान का आरम्भ होता है और समाप्ति स्वतन्त्र चिन्तन मे होती है। इसलिए विद्यार्थियों को चिन्तन-स्वातन्त्र्य का अपना अधिकार कभी नहीं खोना चाहिए। जो शिक्षक विद्यार्थियों पर जवरदस्ती करता है, वह शिक्षक नहीं है। शिक्षक तो वह होगा, जो यह कहेगा कि मेरी वात जॅचे, तो मानो और अगर न जॅचे, तो हरगिज मत मानो। इस तरह जो वुद्धि-स्वातन्त्र्य देगा, वही सच्चा शिक्षक है। क्योंकि वुद्धि-स्वातन्त्र्य ही सच्चा स्वातन्त्र्य है। महापुरुषों के लिए आदर और श्रद्धा जरूर रखी जाय, लेकिन कोई महापुरुष है, इसलिए उसकी वात मानना गलत है। मुझे तो उस वक्त वहुत खुशी होती है, जव मेरी वात किसीको जॅचती

नहीं, इसलिए वह उसे कबूल नहीं करता। किसीको बात जॅचती है और वह उसे कबूल करता है, इसकी भी मुझे खुशी होती है। लेकिन मेरी बात तो न जॅचे और फिर भी उसे कोई कबूल करे, तो मुझे अत्यन्त दुःख होता है। इसलिए हम कहते हैं कि बुद्धि-स्वातन्त्र्य होना चाहिए। उसके लिए बेहतर शब्द "चिन्तन-स्वातन्त्र्य" होगा। हमें अपने चिन्तन-स्वातन्त्र्य पर प्रहार न होने देना चाहिए और अपनी स्वतन्त्रता का हक सुरक्षित रखना चाहिए। विद्यार्थियो का यह अधिकार दुनिया में छीना जा रहा है, इसलिए मैं विद्यार्थियो को आगाह कर देना चाहता हूँ। इन दिनों 'डिसिप्लिन', अनुशासन, के नाम पर विद्यार्थियो के दिमागों को यन्त्रो मे ढालने की कोशिश हो रही है। मैं अनुशासन में विश्वास करता हूँ और यह भी जानता हूँ कि अनुशासन के बिना काम नहीं बनेगा। घर मे आग लगी है, वहाँ अनुशासन न हो तो केवल गड़बड़ ही हो जायगी। चन्द लोग अनुशासन के साथ आग बुझाने जायँगे, तो जितना जल्दी और अच्छी तरह काम होगा, उतना बहुत से लोग जायँगे और उनमे अनुशासन न हो, तो नहीं होगा। लेकिन आज अनुशासन के नाम पर सब जगह यन्त्रीकरण हो रहा है और विद्यार्थियो के दिमागो पर बहुत बड़ा प्रहार हो रहा है।

मुक्त शिक्षण

दुनिया मे तालीम का महकमा सरकारो के हाथों मे है। हम समझते हैं कि इससे बड़ा खतरा दूसरा कोई नहीं हो सकता। हमने बार-बार कहा है कि शिक्षण का अधिकार सरकारो के हाथो मे नहीं होना चाहिए। वह तो ज्ञानियो के हाथो में होना चाहिए, क्योंकि यह काम सेवा-परायणता से ही होगा। आज तो

यह हालत है कि दुनिया की सरकारें शिक्षण का कब्जा ले बैठी हैं। शिक्षण-विभाग का अधिकारी जो भी किताब मंजूर करेगा, उस किताब का अध्ययन कुल विद्यार्थियों को करना पड़ेगा। उत्तर-प्रदेश के इक्यावन जिलों के छह करोड़ लोगों को एक ही किताब दी जायगी और सबसे उसका अध्ययन कराया जायगा। अब तो विशाल आन्ध्र बना है, इसलिए यन्त्रीकरण भी विशाल हो सकता है। क्योंकि पहले जो पाठ्यपुस्तक ग्यारह जिलों के लिए तय की गयी होगी, वह अब बीस जिलों में चलेगी। अगर सरकार फासिस्ट होगी, तो कुल विद्यार्थियों को फासिज्म सिखाया जायगा, सरकार कम्युनिस्ट होगी, तो कम्युनिज्म का प्रचार होगा, सरकार पूँजीवादी होगी, तो पूँजीवाद की महिमा बतायी जायगी, सरकार प्लानिंगवादी होगी, तो प्लानिंग की कहानी विद्यार्थियों को सिखायी जायगी। इससे अधिक खतरा दूसरा कोई हो नहीं सकता। इसलिए शिक्षण का विभाग मुक्त होना चाहिए। प्रथम मुक्ति की सख्त जरूरत है। हम विद्यार्थियों को आगाह करना चाहते हैं कि तुम लोगों को ढाँचे में ढालने का प्रयत्न हो रहा है। इसलिए अपना विचार-स्वातन्त्र्य, चिन्तन-स्वातन्त्र्य सँभालकर रखो।

यूनियन का ढाँचा

लेकिन विद्यार्थी यह बात समझे नहीं हैं। आज तो वे अलग-अलग यूनियन बनाते हैं। हमें बड़ा आश्चर्य होता है। यूनियन तो भेड़ों का होता है, शेरों का नहीं। विद्यार्थियों को भेड़ नहीं, शेर बनना चाहिए। यदि कोई विचार जँचता है, तो उसका प्रचार करें, नहीं तो उसे कबूल नहीं करना चाहिए। मुझे तो बड़ा आश्चर्य लगता है कि सरकार के कारण उनके दिमाग ठण्डे हो

रहे हैं और उधर वे अपने यूनियन बना रहे हैं। अपने देश में लाखों स्कूल चलने चाहिए, पाठशालाएँ चलनी चाहिए और किसी भी विद्यार्थी को किसी भी यूनियन में दाखिल नहीं होना चाहिए। यह कहना चाहिए कि नागरिक हो जाने के बाद स्वातन्त्र्य कम करने की जरूरत पड़ेगी, तो मैं किसी यूनियन में दाखिल हो जाऊँगा, लेकिन आज मैं विद्यार्थी हूँ। इसलिए सौ फीसदी स्वातन्त्र्य रखने का मुझे अधिकार है। यह ठीक है कि राजनीति का मैं चिन्तन करूँगा, विचार करूँगा। लेकिन अपना मत पक्का नहीं बनाऊँगा। विचार बदल सकता हूँ, ऐसी हालत में चिन्तन करूँगा। जब मैं यूनियन में दाखिल होऊँगा, तो यह अपना अधिकार खोऊँगा, इस तरह आपको कहना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि सहयोग नहीं होना चाहिए। सेवा के लिए सहयोग की जरूरत है। पर यूनियन ढाँचे में ढालनेवाला होता है। देश की आजादी के लिए यह एक बड़ा खतरा है।

अपने-आप पर काबू

विद्यार्थियों का दूसरा कर्तव्य यह है कि वह अपने ऊपर काबू पायें। स्वतन्त्रता का अधिकार वही अपने हाथ में रख सकेगा, जो अपने ऊपर काबू पा सकेगा। जो संकल्प मैं करूँगा, उस पर मैं जरूर अमल करूँगा, ऐसी निष्ठा होनी चाहिए। विद्यार्थियों को ऐसा निश्चय होना चाहिए कि मैं अगर सत्य संकल्प करता हूँ, तो दुनिया में कोई ऐसी ताकत नहीं, जो उस संकल्प को तोड़ सकती है। इस वास्ते देह, मन, बुद्धि पर काबू होना चाहिए। यदि मैं सुबह चार बजे उठने का निश्चय करूँगा, तो इन्द्रियों को क्या मजाल है कि उस निश्चय से वे मुझे परावृत्त करें। इस तरह यदि अपने ऊपर काबू नहीं होगा, तो दुनिया में विद्यार्थी टिक नहीं

सकेगा। इसलिए विद्यार्थियों को विद्याभ्यास के साथ यह बात भी व्रत के तौर पर तय करनी है कि मुझे अपने ऊपर काबू पाना है। नहीं तो विद्या वीर्यहीन बनेगी। अपने-आपको काबू में रखने की शक्ति सबसे बडी शक्ति है। आपने स्थितप्रज्ञ के श्लोक सुने। स्थितप्रज्ञ कौन है? जिसकी प्रज्ञा में निर्णय-शक्ति है। आज दुनिया मे बहुत बड़े-बडे सवाल उठते हैं। छोटे सवाल अब नहीं रहे। सारी दुनिया आज सट गयी है। इसलिए बहुत बड़े व्यापक पैमाने पर सोचना चाहिए। निर्णय भी व्यापक बुद्धि से और शीघ्र करने चाहिए। पहले इतने बड़े सवाल पैदा नहीं हुआ करते थे। लोगो को दुनिया का ज्ञान नहीं था। अपने देश में सबसे बडी लडाई पानीपत की हुई थी, परन्तु चीन और जापानवालो का उसका पता नहीं था। लेकिन आज ऐसी हालत नहीं है। दुनिया के किसी कोने में भी छोटी-सी घटना होती है, तो फौरन सारी दुनिया पर उसका असर होता है। यूरोप और अमेरिका की घटनाओं का हिन्दुस्तान के बाजार पर फौरन असर होता है। इस तरह बडे-बड़े सवाल आज पेश होते हैं। इसलिए शीघ्र निर्णय करने की आवश्यकता है। आज निर्णय-शक्ति की जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले नहीं थी। आप देख रहे हैं कि आज किसीको पैदल चलने की फुर्सत नहीं है, हर कोई हवाई जहाज और ट्रेन मे इस तरह भागा जा रहा है, मानो कोई शेर उसके पीछे लगा हो। हमसे भी पूछा जाता है कि आप हवाई जहाज में क्यों नहीं घूमते। हम जवाब देते हैं कि हम अगर हवाई जहाज मे घूमते, तो हमे हवा मिलती, जमीन नहीं। लेकिन हमें जमीन चाहिए, इसलिए हमे झख मारकर जमीन पर चलना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आज का जमाना ऐसा है कि उसमे बहुत शीघ्र फैसले करने पडते हैं। इसलिए इस जमाने मे सबसे बडी

शक्ति है, निर्णय-शक्ति। उसीको प्रज्ञा कहते हैं। जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गयी, उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं। विद्यार्थियों को स्थित-प्रज्ञ बनना चाहिए। उसका तरीका यह है कि अपने मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि आदि पर काबू पाने की कोशिश की जाय। विद्यार्थियों को अपनी सकल्प-शक्ति दृढ़ करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। अगर हम कोई निर्णय करते हैं और वह टूट जाय, तो हमारी ताकत टूट जाती है। इसलिए मैं जो भी निश्चय करूँगा, वह टलेगा नहीं, चाहे प्राण चले जायँ, ऐसी स्थिति होनी चाहिए। इस तरह निश्चय-शक्ति के लिए इन्द्रियो पर काबू पाना बहुत जरूरी है।

निरन्तर सेवा-परायणता

विद्यार्थियो का तीसरा कर्तव्य यह है कि वे निरन्तर सेवा-परायण रहे। बिना सेवा के ज्ञान-प्राप्ति नहीं होती। महाभारत मे एक प्रसग है। अर्जुन, भगवान् कृष्ण और धर्मराज साथ बैठे हैं। अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि जो मेरे गांडीव की निंदा करेगा, उसे मैं कतल करूँगा। धर्मराज ने अर्जुन का उत्साह बढ़ाने के लिए गाडीव की निन्दा करते हुए कहा कि तू और तेरा गांडीव इतना बलवान् है, फिर भी हमें इतनी परेशानी हो रही है और हमारे शत्रु खतम नहीं हो रहे हैं। अर्जुन बड़ा धर्मनिष्ठ था और उसको अपने भाई से बहुत प्रेम था। वह अपनी खुद की निंदा सह लेता, परन्तु गांडीव की निंदा नहीं सह सका। इसलिए कृष्ण के सामने ही उसने धर्मराज पर प्रहार करने के लिए हाथ उठाया। कृष्ण ने उसका हाथ खींचते हुए उससे कहा कि तू कैसा मूर्ख है? तुझे ज्ञान नही है। तूने वृद्धो की सेवा नहीं की है, तो तुझे ज्ञान कैसे प्राप्त होगा? महाभारत मे अन्यत्र यक्ष-प्रश्न की कहानी है। उसमे एक प्रश्न यह पूछा गया है कि ज्ञान कैसे प्राप्त होता

है ? तो जवाब मिला कि "ज्ञानं वृद्धसेवया"—वृद्धों की सेवा से ज्ञान प्राप्त होता है। वृद्धों के पास अनुभव होता है और जो सेवा-परायण होते हैं, उनके सामने वृद्धो का दिल खुल जाता है और वे अपना कुल सार-सर्वस्व दे देते हैं। इसलिए विद्यार्थियो को सेवा-परायण होना चाहिए। वृद्धों की, माता-पिता की, दीन-दुखी की, समाज की सेवा करनी चाहिए। यह नहीं समझना चाहिए कि हम सेवा करते रहेंगे, तो अध्ययन कैसे होगा ? लेकिन यह विश्वास होना चाहिए कि सेवा से ही ज्ञान प्राप्त होता है। रामायण की कहानी है। विश्वामित्र ने दशरथ के पास जाकर यज्ञ-रक्षण के लिए राम-लक्ष्मण की मॉग की। दशरथ मोहग्रस्त था, इसलिए बोल उठा कि मेरे राम की उम्र अभी सोलह साल भी नहीं हुई है, तो मैं उसे कैसे दे सकता हूॅ ? यह सुनते ही तपस्वी विश्वामित्र ने कहा कि ठीक है, मैं जाता हूँ। वाल्मीकि ने वर्णन किया है कि विश्वामित्र के इन शब्दो से सारी पृथ्वी कॉप उठी। ज्ञानी पुरुष की मॉग का इनकार राज्य भी नहीं कर सकता। फिर वशिष्ठ ने दशरथ को समझाया कि तू कैसा मूर्ख है, विश्वामित्र राम-लक्ष्मण की मॉग करते हैं, तो उससे तेरे पुत्रो का कल्याण ही होगा। वे विश्वामित्र की सेवा करेंगे, और उससे उन्हें ज्ञान प्राप्त होगा। सेवा से बढ़-कर कोई विद्यापीठ नहीं हो सकता। यह सुनकर दशरथ ने विश्वामित्र को राम-लक्ष्मण सौंप दिये। फिर वाल्मीकि ने वर्णन किया है कि किस तरह राम-लक्ष्मण को सेवा करते-करते ज्ञान प्राप्त हुआ।

विश्व-मानवत्व

विद्यार्थियो का चौथा कर्तव्य यह है कि उन्हे सर्व-सावधान होना चाहिए। दुनिया में समाज की जो हलचले चलती हैं, उन सबका अध्ययन करना चाहिए। भिन्न-भिन्न वाद निर्माण होते हैं,

उन सब वादों का तटस्थ बुद्धि से अध्ययन करना चाहिए। विद्यार्थियों को सर्वव्यापक होना चाहिए। विद्यार्थी की बुद्धि संकुचित नहीं होनी चाहिए। उसको यह नहीं मानना चाहिए कि मैं तेलुगु भाषा-भाषी हूँ या मैं हिन्दुस्तान का पुरुष हूँ। उसे तो यही महसूस होना चाहिए कि मैं तो द्रष्टा हूँ और यह सब दृश्य है। उससे मैं अलग हूँ, भिन्न हूँ। धर्म के, भाषा के, जो वाद चलते हैं, उन सबसे मैं अलग हूँ और तटस्थ बुद्धि से उनका अध्ययन करनेवाला हूँ। विद्यार्थियों को ऐसी व्यापक बुद्धि जरूर सधेगी। लेकिन इन दिनों हम उल्टा हो देखते हैं। भाषावार प्रान्त-रचना के विषय पर कितने झगड़े हुए ? उसमें हृदय की संकीर्णता प्रकट हुई। उस तरह की संकीर्णता नहीं रहनी चाहिए। विद्यार्थियों को व्यापक बुद्धि से सोचना चाहिए और यह कहना चाहिए कि हम विश्व-नागरिक हैं। हम सारी दुनिया में विश्व-नागरिकता की स्थापना करनेवाले हैं। यह भी नहीं कहना चाहिए कि हम भारतीय हैं। भारतीय तो वे हैं, जा आज के नागरिक हैं, लेकिन हम विद्यार्थी भारतीयता से भी ऊपर उठे हुए हैं। हम विश्व-मानव हैं, हम विद्या के उपासक हैं, तटस्थ बुद्धि से सोचनेवाले हैं और हम संकुचित, पांथिक नहीं बन सकते।

कर्नूल (आंध्र)
११-३-'५६

—विनोबा

सन् सत्तावन का आह्वान : २ :

सन् '५७ भारतीय इतिहास में एक क्रान्तिकारी महत्त्व रखता है। यह स्वय एक क्रान्तिकारी वर्ष है। अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध क्रान्ति की आग पहले-पहल १८५७ मे ही भड़की थी। अब १९५७ आया है। तो इस '५७ में क्या होनेवाला है? कौन-सी क्राति होगी अब भारत में, जब कि यह देश दस साल से पूर्ण स्वतन्त्र हो चुका है?

वास्तव में, आज भारत में ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया मे क्रान्ति की आवश्यकता है—एक ऐसी अनोखी क्रान्ति की, जो पिछली सारी क्रान्तियों से भिन्न हो और जो मानव-जीवन को जड़मूल से परिवर्तित कर दे। आज ऐसी एक क्रान्ति अनिवार्य हो उठी है, जो मानव को मानव बना दे। मानव आज मानव का शत्रु बना हुआ है, मानव आज मानव का शोषण कर रहा है। हर गॉव का, हर नगर का, हर देश का यही हाल है। अवस्था ऐसी बिगड चुकी है, मानव-मानव का पारस्परिक द्वन्द्व इतना बढ़ चुका है कि अब आणविक अस्त्रों के द्वारा सारे मानव-समाज के नष्ट हो जाने का खतरा उपस्थित हो गया है। इसलिए मानव-समाज की रक्षा और उसकी उन्नति के लिए आज प्रेम की क्रान्ति परमावश्यक हो गयी है। जमाना हमें चेतावनी दे रहा है कि "आदमी बनो, एक-दूसरे से प्रेम करो, मिलकर रहो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। आपस में तुम झगड़ोगे, तो पछताओगे। मिलकर रहोगे, तो सुख-शान्ति प्राप्त करोगे, समाज में धर्म और नीति का उदय होगा, मानव-इतिहास मे एक नया युग शुरू होगा।"

इसी प्रेम-क्रान्ति का मंगल-उपदेश विनोवा आज साढ़े पाँच वर्षों से गाँव-गाँव घूमकर हमें दे रहे हैं। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध ने भी इसी प्रकार गाँव-गाँव घूमकर प्रेम का सन्देशा मानव को दिया था। आज दुनिया को बुद्ध के सन्देश की सबसे अधिक आवश्यकता है। लेकिन उसकी पूर्ति आज बुद्ध-जयन्ती के भडकदार उत्सवों से नहीं, विनोवा के मंगलमय उपदेशों से हो रही है।

सन्त विनोवा हमे समझा रहे हैं कि सारा मानव-समाज एक परिवार है और जैसे आज अपने छोटे-छोटे परिवारों में हम बाँटकर खाते हैं, उसी प्रकार समाज में—याने गाँव-गाँव में, नगर-नगर मे, राज्य-राज्य में, देश-देश मे, हमें बाँटकर खाना चाहिए। सब मिलकर पैदा करें और आपस में बाँटकर खायें। तब सभी सुखी होंगे, सर्वत्र शान्ति होगी, धर्म का राज्य होगा, मानव जीवन सफल होगा, विश्व-मंगल और विश्व-शान्ति होगी। 'हमारे-तुम्हारे' का झगड़ा भूल जायँगे, रोटी के टुकड़ों के लिए, मालकियत के लिए, आपस में लड़ना छोड़ देंगे, तो सबका पेट भरेगा, सबके साथ न्याय होगा, प्रेम की हवा घर-घर मे बहेगी!

आज हमारा जितना पतन हो चुका है, जितना स्वार्थ, मोह, लोभ हमें ग्रस चुका है, उसका ध्यान करके हमें लगता है कि वैसा प्रेम का जीवन हमारे लिए असाध्य है, असम्भव है। परन्तु उस महान् लक्ष्य तक पहुँचने के लिए विनोवाजी ने ऐसी सुगम सीढ़ियाँ बतायी हैं, जिन पर चढ़कर हम सहज ही सर्वोदय के उच्च शिखर पर पहुँच सकते हैं वे महात्मा हमें समझा रहे हैं कि पहले हम सब थोड़ा-थोड़ा त्याग करें, एक सीढ़ी ऊपर चढ़ें—भूदान करें, सम्पत्ति दान करें। अगर सब लोग एक सीढ़ी चढ़ जायँ, तो सारा समाज उतना ऊपर उठ जायगा। उसके बाद हम

दूसरी सीढ़ी चढ़ेंगे। फिर तीसरी। अन्त में सब लोग सर्वोदय के शिखर पर पहुँच सकेंगे—लूले भी, लँगडे भी। तो सन् '५७ में हमें इसी पहली सीढी की चढ़ाई समाप्त करनी है। प्रेम-क्रान्ति का यह पहला चरण सन् '५७ में पूरा होगा। इसी क्रान्ति की चर्चा आज हवा में फैली हुई है और यही क्रान्ति आपको करनी है। गॉव-गॉव मे जमीन का बॅटवारा हो, भूदान हो। किसी गॉव में कोई भूमिहीन न रह जाय। धरती माता के सभी बच्चों को माता की गोद मे स्थान मिले। भूमि की सेवा करनेवाले हर परिवार को कम-से-कम गुजारेभर के लिए जमीन प्राप्त हो जाय। गॉव-गॉव में प्रेम का उदय हो, प्रेम का बॅटवारा हो, प्रेम की क्रान्ति हो। सन् '५७ के अन्त तक हमारे देश में कोई भूमि-सेवक भूमिहीन न रहे।

तो भाइयो, आप यह सकल्प करें कि आपके गॉव में भूमिहीन कोई न रहेगा। आप ऐसा न समझें कि भूदान-यज्ञ का कोई 'कार्यकर्ता' आपके गॉव मे जाकर जमीन का बॅटवारा करेगा। कार्यकर्ता तो आप स्वयं हैं। यह आपका अपना काम है, आपकी अपनी जिम्मेदारी है। यह आपका अपना धर्म और कर्तव्य है।

अतः आपसे अनुरोध है कि गॉव-गॉव में आप छोटे-बड़े सभी भूमि-मालिक आपस में मिलकर अपने भूमिहीन भाइयों को प्रेमपूर्वक गुजारे के लायक जमीन दे दें और ऐसा प्रबध करें कि सन् '५७ के अन्त तक जमीन पर मेहनत करनेवाला एक भी परिवार भूमिहीन न रह जाय। ईश्वर आपका मगल करे।

सर्वोदय-आश्रम,
पो० सोखोदेवरा (गया)

—जयप्रकाश नारायण

छात्रों के बीच : २ :

सर्वोदय का अर्थ ही है सबका उदय, सबको भलाई और सबकी तरक्की। मैं समझता हूँ कि समाज में आज शायद ही कोई ऐसा इन्सान हो, जो यह कहेगा, "हम नहीं चाहते कि सबका भला हो। हम चाहते हैं कि पचास प्रतिशत लोगों का भला हो, और पचास प्रतिशत का बुरा या नब्बे प्रतिशत लोगों का भला और दस प्रतिशत लोगों का बुरा हो।" मनुष्य-समाज की इतनी प्रगति हुई है कि हममें से सभी यह कहेंगे कि सबका भला हो। इसलिए सबका भला कैसे होगा? इस पर विचार करना चाहिए।

उदारमतवाद का जमाना नहीं रहा

अगर हममें से हर कोई यह सोचे कि हमारा अपना भला हो—हमें अपनी ही भलाई से मतलब है, अपनी ही भलाई के लिए हमें पुरुषार्थ या उद्यम करना है, तो जाहिर है कि सबका भला नहीं होगा। आज उदारमतवाद (लिबरलिज्म) का जमाना गुजर गया। उस जमाने में अक्सर माना जाता था कि समाज के सभी लोगों में से हर आदमी अपनी भलाई के लिए प्रयत्न करे, तो उसमें से अपने-आप सबका भला हो जायगा। उस जमाने का सारा अर्थशास्त्र और राजशास्त्र और समाज-शास्त्र इसी एक मान्यता पर बना जिसकी छाप आज समाज पर कायम है। किन्तु इतिहास ने साबित कर दिया है कि यह विचार बड़ा ही भ्रामक रहा। दुनिया में देखा गया कि इस विचार के आधार पर व्यक्तियों और समाज का जीवन खड़ा किया गया, सबका भला

नहीं हुआ—कुछ का भला हुआ और कुछ का नहीं हुआ। फिर भी चूँकि हर आदमी अपनी भलाई के लिए सोचे, यही समाज की मान्यता और सामाजिक मूल्य था, इसलिए उस स्थिति को बदलने का उन्हें कोई रास्ता भी नहीं मिल रहा था। आज हम सबके लिए यह गहरे चिन्तन का विषय है कि अगर यह हमारा उद्देश्य या मान्यता है और हम चाहते हैं कि समाज में कोई भी भूखा-नगा न रहे, सब सुखी हों, तो हमें क्या करना चाहिए ?

स्वार्थ का परित्याग हो

महात्मा गांधी ने इस प्रश्न का बड़ा ही स्पष्ट उत्तर दिया है। वे कहते हैं कि अगर हम सबका भला चाहते हैं, तो हमें अपनी भलाई की बात भूलकर सबकी भलाई की बात याद रखनी चाहिए। हमारे जीवन का नियम यह कभी न होना चाहिए कि हम अपने लिए हैं और आप अपने लिए—हम अपनी भलाई सोचें, अपने स्वार्थ का चिन्तन करें, उसके लिए उद्यम करें और आप अपने स्वार्थ के लिए करें। अगर ऐसा होगा, तो कुछ ही लोगों का स्वार्थ सिद्ध होगा और बाकी का नहीं होगा। समाज में परस्पर नाना प्रकार के संघर्ष होंगे, कलह, अन्याय, शोषण, विषमता और नाना प्रकार के सामाजिक रोग पैदा होंगे, जिसका साक्षी आज का इतिहास हमारे सामने खड़ा है। इसलिए अगर हम सचाई के साथ यह मानते हैं कि एक ऐसा समाज बने, जिसमें सबका भला हो, तो पहले अपने भले की बात भूल जायँ। सबका भला होगा, तो हमारा भी भला हो जायगा, क्योंकि सबमें हम भी हैं। किन्तु अगर हर कोई सोचे कि हमारा भला होगा, तो सबका भला होगा, यह सत्य नहीं है।

इसलिए पहली बात हमें यह सोचनी चाहिए कि अगर हम

सर्वोदय चाहते हैं, सबका भला चाहते हैं, तो हमें अपनी दृष्टि बदलनी होगी, अपने पर से अपनी दृष्टि हटाकर वह दूसरों पर ले जानी होगी। हमारा कर्तव्य अपन स्वार्थ को चिन्ता या उसकी सिद्धि के लिए उद्यम करना नहीं, बल्कि दूसरों के स्वार्थ के लिए, सारे समाज के भले के लिए उद्योग करना है। हमें अपने स्वार्थों का परित्याग करना होगा। यदि व्यक्तिगत स्वार्थों एवं दलो, गिरोहो, वर्गों और राष्ट्रो के स्वार्थों का परित्याग न होगा, तो सर्वोदय नही हो सकेगा। तब समाज का यही नक्शा होगा कि अगर एक राष्ट्र का उदय, तो दूसरे का अस्त। एक वर्ग का उदय, तो दूसरे वर्ग का अस्त। आज तक दुनिया में जितने सामाजिक संघर्ष या समाज-परिवर्तन क प्रयोग हुए, सभीका आधार स्वार्थ ही रहा, भले ही वे भारत, चीन, यूनान, रोम और आधुनिक यूरोप में हुए हो या दूसरे देशों में। सर्वत्र एक दल या एक वर्ग का स्वार्थ, दूसरे दल या दूसरे वर्ग के स्वार्थ के साथ टकराया और उसमे से कुछ नया परिवर्तन हुआ—समाज का रूप बदला, लेकिन सर्वोदय नहीं हुआ। किसी एक वर्ग का स्वार्थ सिद्ध हुआ, तो दूसरे वर्ग का निष्फल हुआ, सर्वोदय आज तक नहीं हुआ। स्वार्थों की लड़ाई से सर्वोदय निष्पन्न हो नहीं सकता।

सर्वोदय-समाज तभी बनेगा या यों कहिये कि जब सर्वोदय-समाज बन जायगा, तब समाज के सभी व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थ के लिए न जीयेंगे, बल्कि दूसरो के, समाज के या सबके स्वार्थ के लिए जीयेंगे, लड़ेंगे या मरेंगे। याने सर्वोदय-समाज एक ऐसा समाज होगा, जो निःस्वार्थता की बुनियाद पर खड़ा होगा। वह व्यक्तिगत या आंशिक स्वार्थ पर नहीं, सबके स्वार्थ पर खड़ा होगा। वास्तव में उसे स्वार्थ कहना भी उचित नहीं होगा। लेकिन कह भी दें, तो कोई हर्ज नहीं। सारांश, सर्वोदय-समाज का यही

नक्शा होगा कि हर व्यक्ति सारे समाज के लिए प्रयास करेगा। संघर्ष से निःस्वार्थ पैदा नहीं हो सकता। आज तक यह माना गया कि समाज-क्रान्ति के लिए स्वार्थों के संघर्ष से ही प्रेरणा मिल सकती है। आज तक सभी क्रान्तिकारियों की यही मान्यता रही। लेकिन इतिहास साक्षी है कि इस तरह की क्रान्तियों में से जो समाज निकला, वह भी स्वार्थ पर ही खड़ा रहा। एक वर्ग का स्वार्थ गया और दूसरे वर्ग का आया।

मान लीजिये, मजदूर-वर्ग की ही जीत हो गयी, तो यह नहीं हुआ कि मालिकों या पूँजीपतियों के खिलाफ अपने स्वार्थ के लिए लड़नेवाले सभी मजदूरों में आपसी स्वार्थों का कोई झगड़ा ही न रह गया। स्वार्थ का झगड़ा तो केवल दूसरे वर्ग से था। किन्तु उस वर्ग के अन्दर से, जिसकी जीत हुई, स्वार्थ की भावना खतम नहीं हुई और न हो ही सकती है। कारण मजदूर स्वार्थ के लिए लड़ रहा है। मजदूर-वर्ग के लाखों-करोड़ों मजदूर अपने स्वार्थों के लिए लड रहे हैं। वे यह समझते हैं कि मालिकों के खिलाफ हम करोड़ों मजदूरों के स्वार्थ एक जैसे हैं, इसलिए एक झंडे के नीचे इकट्ठे होकर लड़ लेते हैं। लेकिन वह लडाई खतम हो जाने पर भी स्वार्थ की भावना अपने-आप खतम नहीं हो जाती। वह कायम ही रह जाती है और फिर हर मजदूर, हर किसान की आपस में लडाई होने लगती है, जो मालिकों से लड़ाई लड़कर जीता है—चाहे वह वैधानिक लडाई शान्तिमय रही हो या फिर खूनी ही रही हो।

मेरा सम्बन्ध मजदूरों और उनके आन्दोलनों से काफी रहा है। मेरा अपना अनुभव है: मजदूरों का पहले यह नारा था और आज भी है कि 'समाज में समता का राज हो, विषमता मिटे।' इस पर हम रेलवे के मजदूरों से पूछते हैं कि 'आप चाहते हैं कि

विषमता मिटे, तो अपने अन्दर बने तरह-तरह के क्लासों और भेदों को आप क्यों नहीं मिटा देते? अगर आप विषमता के विरोधी हैं. तो आपस में ही विषमता क्यों रखते हैं? किसीकी तनख्वाह ६५) से शुरू होकर १३५) तक जाती है, किसीकी ८०) से शुरू होकर २१०) तक जाती और किसीकी १२५) से शुरू होकर ३५०) तक जाती है—इसका मतलब क्या है? आखिर आपने यह भेद क्यों रखा? तो वे एकदम जवाब देते : 'यह कैसे हो सकता है? हमारा यह काम है, उसका वह काम है, यह 'स्किल्ड' (कुशलता का काम) है, वह 'अन-स्किल्ड' (अकुशल) काम है।' इस तरह वे दुनियाभर की बहस करते थे। सभी मजदूर, फिर वे कपड़े के कारखाने के, टाटा के या कोयले की खानों के हों, मालिकों के या सरकार के खिलाफ एक हैं। एक 'ट्रेड-यूनियन' के सभी मेम्बर हैं। हड़ताल होगी, तो सभी हड़ताल करेंगे। प्रदर्शन करना होगा, तो सब प्रदर्शन करेंगे। सब इकट्ठे मिलकर नारे लगायेंगे कि 'ऊँच-नीच, गरीब-अमीर का भेद-भाव मिटना चाहिए।' लेकिन उनमें आपस में जो भेद-भाव है, उसे मिटाने को वे तैयार नहीं।

विनोबाजी के पास कॉलेज के कुछ अध्यापक पहुँचे, जब कि उनका पडाव भागलपुर में था। अध्यापकों ने कहा : 'समाज में समता होनी चाहिए, यह हर समझदार आदमी आज कहता है। समता की शुरुआत शिक्षा-विभाग से होनी चाहिए, क्योंकि शिक्षा हमारे राष्ट्रीय जीवन की बुनियाद है। जिस प्रकार की शिक्षा मिलेगी, उसी प्रकार के हम बनेंगे, वैसा ही देश बनेगा। इसलिए पहले शिक्षा-विभाग से ही समता का प्रयोग शुरू होना चाहिए, यह हमारी माँग है। हम चाहते हैं कि हमारे प्रिन्सिपल साहब को (जो कुछ उन्होंने बताया मुझे याद नहीं, फर्ज कीजिये उन्होंने

कहा) ५००) या ७००) मिलता है और हम लोगों में से किसीको १५०), किसीको १७५) तो किसीको २००) मिलता है, यह अच्छा नहीं है। यह भेद मिटना चाहिए। तब विनोबाजी ने कहा कि 'अगर आप ऐसा चाहते और मानते हैं, तो बड़ा आसान है। आप लोगों को महीने के अन्त में या शुरू में जब भी वेतन मिलता है, तब आप सब अध्यापक अपना-अपना रुपया एक जगह इकट्ठा कर लीजिये, ढेर लगा लीजिये और बराबर बराबर बाँट लीजिये, बस आपके लिए समता कायम हो गयी। सरकार की तरफ से कानून बनेगा या मैनेजिंग कमेटी की तरफ से बनेगा, तभी यह काम होगा, यह क्या बात है ? दर-असल चाहते हो, तो करो। हम भी चाहते हैं कि सबसे पहले शिक्षा-विभाग में समता की स्थापना हो। लेकिन शिक्षकों को भी कोई डंडे के जोर से समता का सबक सिखाये, तो उसमें क्या कोई ताकत है, कोई महत्त्व है ? अगर समाज में मार-पीटकर समता कायम होगी, तो उसमें से विषमता अवश्य निकलेगी। मन समता को कबूल न करेगा, तो उसके अन्दर से विषमता किसी-न-किसी तरह से पैदा हो ही जायगी।

तो, मैं आपसे यह कह रहा था कि जब हम स्वार्थ की बात सोचते हैं, जहाँ वर्ग-स्वार्थ की भी बात आती है, वहाँ एक खास वर्ग के व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थ का ही विचार करते हैं। सारी लडाई स्वार्थ पर लडी जाय, हम अपना सारा दर्शन (फिलासफी) स्वार्थ पर खडा कर लें, तो यह हर्गिज सम्भव नहीं है कि जिस दल, वर्ग या राष्ट्र की जय हुई, उसमें आपस में स्वार्थों का झगडा खड़ा न होगा—होगा और अवश्य होगा। फिर अगर स्वार्थ का झगड़ा रह गया, तो सर्वोदय भी नहीं होगा। जब तक हम यह नहीं समझ लेते कि स्वार्थ का परित्याग करने पर ही हमारा, समाज

का या सबका भला होता है, और इस आधार पर हमारी लड़ाई नहीं चलती, तब तक सर्वोदय निष्पन्न नहीं होता।

आपमें से बहुतों के दिलों में यह प्रश्न उठता होगा कि विनोबाजी जो कह रहे हैं जमीन बाँटो, सम्पत्ति बाँटो, एक-एक हिस्सा देते जाओ, रुपये में एक पैसा, दो पैसा, एक आना या छठा हिस्सा, अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक देते जाओ, यह कौन-सी क्रान्ति है ? इस तरीके से क्या होगा ? इससे गरीबी और अमीरी का सवाल हल कैसे होगा ? इसके मुकाबले में आपको पुरानी बातें याद आती होंगी कि क्रान्ति तो तब होगी, जब गरीब अपना संगठन कर लें, अमीरों से सम्पत्ति छीन ले और उसे आपस में बाँट लें। वे उसे चाहे कानून से छीन ले, चाहे राष्ट्रीयकरण करके छीन लें, समाजीकरण करके छीन लें, सीलिंग बनाकर छीन ले या तलवार से छीन लें। बस, हमारे सामने क्रान्ति का यही एक नक्शा रहा। किन्तु अगर गरीब, शोषित या दलित संगठित होकर अपने स्वार्थ के लिए शोषकों से हिंसा या अहिंसा से लड़ें, दोनों तरह की लड़ाइयों का आधार स्वार्थ ही होगा। हमने आपको समझा दिया है कि यह कोई सच्ची क्रान्ति नहीं है।

आपको ऐसा लगता होगा कि खूब मार-काट हो रही है, मकान जलाये जा रहे हैं, कतल हो रहा है, मालदार लोग लूटे जा रहे हैं, करोड़पतियों का धन बाँटा जा रहा है, कारखानों पर मजदूर कब्जा और जमीनों पर किसान और मजदूर कब्जा कर रहे हैं, बड़ी भारी क्रान्ति हो रही है। दुनिया मे ऐसी जो क्रान्तियाँ हुई, आखिर उनसे क्या निकला ? साफ है कि उनमें से क्रान्ति का असली तत्त्व नहीं निकल सका। स्वार्थों की लड़ाई होती है। सिर्फ स्वार्थ जीवन मे रह जाता है। जीवन का आधार स्वार्थ

हो जाता है। फिर इन्जीनियर कहता है कि हम भी मजदूर हैं, मेकेनिक कहता है कि हम भी मजदूर हैं, अकुशल परिश्रम करनेवाला भी कहता है कि हम मजदूर हैं, सिपाही भी कहता है कि हम मजदूर हैं, जनरल भी कहता है कि हम मजदूर हैं, कारखाने का डाइरेक्टर भी कहता है कि हम मजदूर हैं, सामूहिक फारम में खेती करनेवाला किसान भी कहता है कि हम मजदूर हैं, कलेक्टिव फारम का मैनेजर कहता है कि हम भी मजदूर हैं। हम सबने लड़कर जमीन के, कारखाने के और सम्पत्ति के मालिकों से अपना हक छीन लिया है। लेकिन इसके बाद क्या होता है? इंजीनियर कहता है : 'हमें ज्यादा मिलना चाहिए, मामूली मजदूर को जितना मिलता है, उतना ही अगर हमें मिले, तो कहना होगा कि हमने यह जो सारी शिक्षा प्राप्त की, और इंजीनियर या अच्छे वैज्ञानिक होकर हम अपने दिमाग से समाज की सेवा कर रहे हैं, आप उसका मुकाबला उस आदमी से करने जा रहे हैं, जो सिर्फ अपने हाथ से काम करता है।' इस सेना का जनरल कहता है : 'वाह! जो प्राइवेट को, साधारण सैनिक को मिलेगा, वही सेनापति को मिलेगा, यह कैसे हो सकता है? हमें ज्यादा मिलना चाहिए, बँगला और मोटर होनी चाहिए, हमें इतना बड़ा काम करना है। सारी सेना चलानी है।' ये सारी बातें पैदा होती हैं।

सारांश, कोई मालिक, पूँजीपति, जागीरदार या जमींदार न रहने और एक वर्गहीन मजदूर-समाज बन जाने पर भी उस समाज का एक मजदूर कहता है कि दूसरे मजदूर से हमें ज्यादा मिले। आखिर वह ऐसा क्यों कहता है? इसीलिए कि वह लड़ाई स्वार्थ के आधार पर हुई। समाज से स्वार्थ का विचार नहीं मिटा, तो क्या क्रान्ति हुई? मूल्य तो नहीं बदले। पूँजीपति चला गया और राष्ट्रीयकरण हो गया और उसकी जगह पर एक बहुत बड़ा अफ

सर बैठ गया—एक जनरल मैनेजर या एक डाइरेक्टर बैठ गया। उसे भी वैसी ही सुविधाएँ मिलने लगीं, उसकी भी वही सत्ता, उसके हाथों में भी उतनी ही ताकत आ गयी, बल्कि उससे ज्यादा ताकत आ गयी, तो फिर क्या क्रान्ति हुई ?

आज के क्रान्तिकारियों की आँखों पर परदा पड़ा है, जिससे वे इसके आगे देख नहीं पाते। उन्हें लगता है, बस, सिवा इसके कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है। हम अपने स्वार्थ के लिए चाहे तलवार से लड़ें, चाहे कानून से, चाहे सत्याग्रह करें, लेकिन लड़ें अपने स्वार्थ के लिए। सत्याग्रह और स्वार्थ के लिए ? ये बेमेल बातें हैं। क्या स्वार्थ के लिए सत्याग्रह हो सकता है ? स्वार्थ कोई तत्त्व ही नहीं। स्वार्थ की लड़ाई सत्य की लड़ाई हो नहीं सकती। किन्तु सर्वोदय की लड़ाई सबके स्वार्थ की लड़ाई, सारे समाज के स्वार्थ की लड़ाई हो सकती है, लेकिन उसमें समाज बँटेगा नहीं।

स्वार्थ-त्याग की प्रक्रिया

आज आपके सामने क्रान्ति का एक नया दर्शन रखा जा रहा है। गांधीजी ने इसे बहुत स्पष्टता से रखा, लेकिन शब्दों में आज उसका व्यावहारिक रूप हमारे सामने पेश हो रहा है। क्रान्ति किस प्रकार होगी ? स्वार्थ छोड़ने की कौन-सी प्रक्रिया है ? यह कैसे सम्भव होगा कि समाज में हम अपना स्वार्थ छोड़ें, आप अपना स्वार्थ छोड़ें, करोड़ों लोग अपना स्वार्थ छोड़ें और क्रान्ति हो ? स्वार्थ के परित्याग का यह आन्दोलन कैसे हो, जिसमें से निःस्वार्थ निष्पन्न हो, एक नया सामाजिक मूल्य पैदा हो और स्वार्थ का मूल्य मिट जाय।

लोग हमसे पूछते हैं : 'यह समझ में नहीं आता कि अमीरों को, जिनके पास बहुत जमीन और बहुत धन है, समझा करके आप

समाज में समता कैसे ला देंगे ? क्या आपके समझाने मात्र से वे अपनी हजारों एकड जमीन दे देंगे ? वे यह कहें कि हमारे पास पाँच हजार एकड़ जमीन है। हम अपने बाल-बच्चों के लिए बीस एकड रखकर बाकी सब दे देंगे—क्या यह कभी सम्भव है ? क्या आप लोग सपना देख रहे हैं ? इसी तरह किसी करोडपति से आप कहें कि छठे हिस्से का दान दे दो। मान लें कि उसने दे दिया उसने अपने पास की छह करोड की सम्पत्ति में से एक करोड दे भी दिया, तो उससे क्या हो गया ? कौन-सी क्रान्ति हो गयी ? कौन-सी समता कायम हो गयी ? पाँच करोड़ का मालिक तो वह फिर भी बना ही रहा। यह क्या आन्दोलन है आप लोगों का ?

'हम यह तो समझ सकते हैं कि मजदूर तलवार के जोर से उसके घर में घुस जाय और सब धन छीन ले। या यह भी समझ सकते हैं कि पार्लमेण्ट में कानून बनाकर 'कैपिटल देवी' 'पूँजी' के ऊपर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय, जिससे किसीके पास कितना ही धन हो, इतने से ज्यादा किसीके भी पास नहीं रह सकता—इस प्रकार धन और धरती पर मर्यादा डाल दी जा सकती है। या यह समझ सकते हैं राष्ट्रीयकरण हो, इनकम टैक्स, सुपर टैक्स लगा दिये जायँ—ये बातें तो हमारी समझ में आती हैं। फिर गरीब आपको भले ही दे दे। अमीर भी थोडा कुछ दे दे, इसलिए दे दे कि गरीबों का बडा दबाव पड़ रहा है। कुछ वह विनोबा को, तो कुछ जयप्रकाश नारायण को दे देगा और छप जायगा कि फलाने सेठ ने सम्पत्तिदान दिया, जिससे समाज में उसे कुछ आदर प्राप्त हो जायगा और उसका कुछ नाम हो जायगा। आप लोगों को धोखा देने के लिए वह कुछ दे देगा। लेकिन इससे समाज का परिवर्तन कैसे होगा ?'

इस पर मेरा जवाब यह है कि जो भाई इस तरह की शंका करते हैं, उन्होंने इस आन्दोलन को समझा ही नहीं है। विनोबाजी क्या करना चाहते हैं और महात्मा गांधीजी क्या कह गये, वह समझा ही नहीं। मैं आपसे यह अर्ज करूँ, जब कोई धरती या धन का धनी सम्पत्तिदान या भू-दान करता है, तो हमें बड़ा आश्चर्य लगता है। हम उसे समझाते हैं, लेकिन हमारी यह अपेक्षा नहीं कि हमारे समझाने से वह सम्पत्ति का विसर्जन कर देगा। मगर वह दान करता है। अनेक करोड़पतियों ने भी सम्पत्ति-दान दिया है—टाटा, खटाऊ, कितने ही लोगों ने दिया, पर सबका नाम लेने की जरूरत नहीं। किसीने छठा हिस्सा, किसीने पाँचवाँ हिस्सा, किसीने आमदनी का, किसीने खर्च का, दिया है। हजारों एकड़ के मालिकों ने भी दिया और धनिकों में से थोड़े-से लोगों ने भी दिया है। लेकिन मैं इसे जादू मानता हूँ। यह महात्मा गांधी का या इस देश के पुराने ऋषि-मुनियों का प्रताप है। इस देश की हवा में ही ऐसा कुछ है। किन्तु हमारी यह अपेक्षा नहीं है। कारण अमीरों के दिल में क्रान्ति की कोई आग सुलग नहीं रही है। अमीरों का नारा यह नहीं कि 'धन और धरती का बँटवारा हो, समाज में समता हो, राष्ट्र की सम्पत्ति राष्ट्र को हो, सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण हो।' यह नारा तो आपका है। 'इनकलाब जिन्दाबाद' का नारा आप लगाते हैं, नये समाज का सपना आप देखते हैं। देश के गरीबों, मध्यम-वर्ग के लोगों और नवयुवक क्रान्तिकारियों का यह सपना है। आखिर जो ऊँचा बैठा है, वह क्यों नीचे उतरना चाहे? वह क्यों उलट-फेर चाहे? हाँ, आप चाहते हैं कि उलट-फेर हो जाय।

तो, क्रान्ति और समता के चाहनेवालों का कर्तव्य है कि वे धन-धरती का बँटवारा करें। उनका काम है कि इस क्रान्ति में वे आगे

कदम रखें। समाजवादियों और साम्यवादियों ने कहा कि पूँजीवादी समाज में होनेवाली क्रान्ति का नेतृत्व मजदूरों, श्रमिकों के हाथ में होगा। हम भी यही कहते हैं कि इस क्रान्ति में अगर आगे बढ़ना है, तो आपको ही बढ़ना है, लेकिन सही रास्ते पर बढना है। जितनी ये पुरानी क्रान्तियाँ हुईं, उनमें क्रान्तिकारियों को यश नहीं मिला, समाज की समस्याओं का हल नहीं हुआ—समाज से सघर्ष, कलह और विषमता नहीं मिटी। हमने इसके कारण आपको समझाये। इसलिए आपको क्रान्ति का दूसरा रास्ता पकडना होगा। किन्तु आज तो गरीब कहता है कि 'करोडपतियों का धन समाज का है। इसलिए करोड़पतियों के धन का समाजोकरण या बँटवारा होना चाहिए। लेकिन हमारा धन तो अपना है। उसके हम मालिक हैं, उसके बँटवारे का कोई सवाल नहीं है। हमें पचास रुपया मिलता है, उसे डेढ़ सौ और दूसरे को ढाई सौ मिलता है। उसका बँटवारा नहीं होगा। वह हमारा है, हम मुट्ठी बाँधकर रखेंगे हमने अपनी बुद्धि के बल से पैदा किया है, पराक्रम से पैदा किया है, इसलिए वह हमारा है। और अमीरों के धन में सबका हिस्सा है, क्योंकि वह सबके मेल और सहयोग से पैदा हुआ है।' इस तरह वह दो भूमिकाओं पर खड़ा होता है: अपने लिए स्वार्थ की और अमीर के लिए निःस्वार्थ की।

दुनिया में डेढ़ सौ बरस से मजदूर-ट्रेड-यूनियन-आन्दोलन चल रहा है। उसका जन्म इग्लैण्ड में हुआ और वहाँ उसने जार पकडा। ब्रिटिश-ट्रेड-यूनियन-काग्रेस दुनिया की बड़ी-से-बडी और मजबूत-से-मजबूत सस्थाओं मे से है। उसकी अपनी पार्टी है। उसने अपना राज्य भी चलाया—वहाँ मजदूरों का राज्य भी कायम हुआ। लेकिन इतना सारा करने के बाद भी, आज इग्लैण्ड के मजदूर की हालत क्या है? उसकी मान्यता क्या है? उसका

क्या विचार है ? उसका और समाज का जीवन कैसा है ? डेढ़ सौ बरस की लड़ाई में वह आज कहाँ तक पहुँच पाया है ? अमेरिका में 'ट्रेड-यूनियन' आन्दोलन बहुत ही शक्तिशाली है। उनके एक-एक एग्रीमेण्ट (इकरार) होते हैं। सगठित मजदूर-समूह इतनी कुशलता और इतनी शक्ति से अपने हित के लिए समझौता करता है—वह इतनी दूर तक जाता है—कि मालिक किसी मजदूर को तब तक नौकर नहीं रख सकता, जब तक कि वह (मजदूर) 'ट्रेड-यूनियन' (मजदूर-सघ) का मेम्बर नहीं हो जाता। उन्होंने 'क्लोज शाप' (तालाबन्द दूकान) बना रखा है उन्होंने यह सब तो किया है, फिर भी वे मजदूर के मजदूर ही हैं और मालिक मालिक ही। दोनों में लड़ाई जारी ही है। तब क्या निष्पन्न हुआ ? जहाँ मजदूरो क नाम से क्रान्ति हुई और जहाँ के बारे में कहा जाता है कि मजदूरों का राज्य है, वहाँ भी क्या हाल है ? यह आप सबको मालूम होना चाहिए। कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए कोई नयी बात न होनी चाहिए, अगर आप जाग्रत और दुनिया की बातों से परिचित हैं। आखिर वहाँ ऐसा क्यों हो रहा है ? इतने बरसो से वहाँ यह लड़ाई चल रही है, उसका नतीजा कुछ नहीं निकला और निकला भी है, तो बहुत ही नगण्य ! ऐसा क्यों ? स्पष्ट है कि इसमें से कुछ निष्पन्न नहीं होगा और होगा भी, तो वही स्वार्थ का झगड़ा। फिर आपस में दलबन्दियाँ और फिर वही मार-काट !

सम्पूर्ण सम्पत्ति समाज की है

आज क्रान्ति का दूसरा रास्ता यह बताया जा रहा है कि 'भाई, आप कहते हो कि सम्पत्ति समाज की है, तो तुम्हारी सम्पत्ति भी समाज की है। अगर पूँजीपतियों की सम्पत्ति

समाज के सहयोग से पैदा हुई, तो आपमें से या दुनिया में कौन यह कह सकता है कि हमने अकेले के पुरुषार्थ से पैदा किया है। भला कोई मनुष्य ऐसा कह सकता है? मनुष्य का अकेला जीवन ही नहीं। वह एक सामाजिक जीव है। समाज में रहता है— जन्म से लेकर मृत्यु तक रहता है। मनुष्य के बारे में सबसे बडी समझने की बात यही है कि समाज में हमारा जीवन इतना सहज है। सहज में पैदाइश, सहज में सारा काम और मृत्यु भी समाज में सहज ही होती है। हमें सोचने का मौका ही नहीं मिलता। हमारे पैदा होने से लेकर जब हम इस दुनिया से चले जाते हैं, तब तक समाज बराबर हमें कुछ-न-कुछ देता रहता है, चाहे हम कुछ भी कर रहे हों। आपको यहां विद्या मिल रही है, शिक्षा मिल रही है। यह शिक्षा लेकर, डिग्री प्राप्त कर आप यहाँ से निकलें और कोई नौकरी-धन्धा करें, तो क्या यह कहेंगे कि हम अपने बुद्धिबल से कमा रहे हैं? इसमें किसीका क्या है? हमने अपने पराक्रम से बी० ए०, एम० ए० पास किया। सोचिये, क्या आप अकेले अपने पराक्रम से कभी यह कर सकते थे? किसी भी बहुत तीव्र-बुद्धि विद्यार्थी को, जो फर्स्ट-क्लास-फर्स्ट आता हो, आप अकेले जंगल में बैठा दें, तो क्या वह वहाँ से बी० ए०, एम० ए० पास करके आयेगा? वह कुछ नहीं कर सकता। हाँ, जंगली होकर आयेगा, मर जायगा— शायद वह जिन्दा भी नहीं रहेगा।

हमारा कोई काम दूसरों की मदद के बगैर नहीं हो सकता। चाहे हम नौकरी करें, चाहे किसानी, खेती, मजदूरी, व्यापार, वकालत या डॉक्टरी करें। कोई बडा भारी वकील कहे कि वाह, हम तो बुद्धि-बल से कमाते हैं। इसमें समाज का क्या एहसान है? पर सोचिये, वकील साहब को जंगल में बैठा दिया जाता, तो क्या वे वकालत सीखकर आते? यह सारी वकालत की विद्या समाज ने

पैदा की। सैकड़ों, हजारो वर्ष में यह सारा ज्ञान-विज्ञान पैदा हुआ। पटना के इस विश्वविद्यालय में ही देखिये। इमारतें बनीं, कितने लोगों ने चन्दा दिया, कितने लोगों ने कर दिया। कितने अध्यापक यहाँ इकट्ठे हैं, कितनों ने पुस्तकें लिखीं और छापी हैं। सारा काम हो रहा है। समाज के कानून बने हैं, फिर भी आपस के झगड़े होते ही हैं, मुवक्किल वकील साहब के पास आते हैं, तभी वे कमा पाते हैं। घरबैठे कोई कैसे कमा सकता है, फिर चाहे वह धनी से धनी व्यक्ति क्यों न हो। कोई भी अकेले नहीं कमा सकता।

करोड़पति कहते हैं कि हम अपनी बुद्धि से कमाते हैं, इसमें किसका हिस्सा है? पर मान लीजिये, देश के किसी सबसे बड़े सेठ से कह दें कि 'सेठजी, आप एक करोड़ रुपया लेकर पचास वर्ष जंगल में जा बैठो। शर्त इतनी ही है कि किसी भी इन्सान से आपकी मुलाकात नहीं होगी। जानवरों, दरख्तों और चिड़ियों से जितना प्रेम करना चाहो करो, लेकिन मनुष्य से आपकी भेट नहीं होगी।' इस तरह अगर वह एक करोड़ लेकर पचास बरस जंगल में जा बैठे, तो एक कौड़ी नहीं पैदा कर सकता। उसकी सम्पत्ति में एक पैसे की वृद्धि नहीं हो सकती। किसी तरह वह अपना पेट भर करके जिन्दा रहे, तो इधर-उधर से जंगल की लकड़ी इकट्ठा कर लाये, अच्छे-अच्छे पत्थर खूबसूरत इकट्ठा कर लाये, फल-मूल ले आये। जब वह सूखी लकड़ी अपने कन्धे पर रखकर गाँव में ले जायगा और बेचेगा, तभी दो पैसे उसे मिलेंगे। गाँववालों से ही उसके धन की बढ़ती होगी। सारांश, जब तक हमारा दूसरे से संपर्क नहीं आता, धन पैदा नहीं हो सकता। हम विद्या नहीं हासिल कर सकते। काम-धन्धा, नौकरी, कुछ भी नहीं कर सकते। करोड़पतियों के पास जो धन है, वह मजदूरों ने पैदा किया है, इसलिए वह मजदूरों को याने समाज को मिलना

हम इसके मालिक हैं।' वह इसीलिए कहता है कि सारा समाज यही कहता है। करोड़ों गरीबों के मुँह से भी यही आवाज निकल रही है। इसीलिए उसे भी यह कहने की हिम्मत होती है। लेकिन अगर करोड़ों मुँह से यह आवाज निकलने लगे कि 'नहीं, कुछ हमारा नहीं, यह जमीन, यह सम्पत्ति, सब समाज का है, हम बाँटकर खा रहे हैं, हम इसके मालिक नहीं, सारा समाज मालिक है', तो इन मुट्ठीभर लोगों को भी यह कहने की हिम्मत न होगी। किन्तु आज समाज में यही मालकियत की हवा है। समाज का यही मूल्य और यही विचार है, यही हमारे जीवन का नियम है। इसीलिए वह ऐसा कह पाता है। इस माने में हममें और उसमें फर्क क्या है? गरीब और अमीर में फर्क क्या है? हम भी स्वार्थी हैं। हमारे अन्दर भी वही भाव है कि हमने जो पैदा किया—भले ही वह पचास ही रुपया क्यों न हो—वह हमारा है। फिर वह भी कहता है कि 'तुमने पचास पैदा किया, तो हमने पचास लाख! यह किस्मत का खेल है कि तुम्हें कम मिला और हमें ज्यादा। तुम भी अपने लिए माँगते हो और हम भी अपने लिए माँगते हैं। तुम लड़ाई में हार गये और हम जीत गये। तुम हारे, इसीलिए हमसे छीनने आते हो। पहले तुम अपना दे दो, तब मुझसे माँगो।'

सारांश, जब हम और हमारे करोड़ों लोग अपना-अपना स्वार्थ और स्वामित्व छोड़ेंगे, तभी ठोस और असली क्रान्ति होगी और तब हो सकता है कि इन अमीर लोगों को, जो आज छह करोड़ में से सिर्फ एक करोड़ हमें दे रहे हैं, छह करोड़ में से छह करोड़ देना पड़े। उनको कहना पड़ेगा कि 'यह कारखाना, दूकान या कम्पनी हमारी नहीं, सारे समाज की है और मुनाफा भी हमारा नहीं है। हम समाज की सेवा

करेंगे, कारखाना और कम्पनी चलायेंगे, व्यापार करेंगे और जो मुनाफा होगा, वह समाज का होगा। समाज जितना हमें देगा, उतने में ही हम गुजारा करेंगे।' लेकिन बहस के लिए मान लीजिये कि कुछ लोग ऐसे हों, जो इस बात को कबूल न करें, जिनका मोह इतना गहरा हो। तब क्या होगा? जब अपना स्वार्थ त्यागनेवाले करोड़ों लोग अपने को इस नैतिक भूमिका पर खडा कर दें कि अमीरों का धन समाज को मिल जाय, उसमें सबका हिस्सा हो, जितना हिस्सा हमारा हो वहां हमें मिले, हम अपने लिए नहीं, समाज के लिए माँग रहे हैं, हम अपने पास का भी दूसरों को बाँट रहे हैं, मिलकर पैदा करते और बाँटकर खा रहे हैं और तब भी अमीर अपनी भूमिका न छोड़ें—तो गरीब उन्हें कह सकता है: 'ठीक है साहब, जब आप इतने पाप पर उतारू हैं, अधर्म का रास्ता नहीं छोड़ते, तो आपके साथ हमारा किसी प्रकार का सहयोग नहीं होगा। हम आपके खेतों में हल चलाने न जायेंगे, दफ्तरों और कारखानों में काम नहीं करेंगे।' क्या आप समझते हैं कि एक दिन भी समाज का यह ढाँचा बाकी रह सकता है? यह सारा समाज एक पिरेमिड की तरह है। पिरेमिड के शिखर पर ये लोग बैठे हैं, लेकिन उसका आधार क्या है? ये करोड़ों लोग, जो नीचे पड़े हैं, वे ही उसका आधार हैं। करोड़ों का स्वार्थ, करोड़ो का स्वामित्व इन मुट्ठीभर लोगो के स्वार्थ और स्वामित्व का आधार है। जब करोड़ों लोग अपना स्वार्थ और अपना स्वामित्व छोड़ देते हैं, तो सारा यह जो पिरेमिड है, अपने-आप नीचे चला आयेगा।

आज मजदूर कहता है कि 'आपने इतना मुनाफा कमाया है, इसलिए आपको हमारी मजदूरी रुपये में दो आना बढ़ा देनी पड़ेगी। साल में तीन महीने का बोनस मिलता है, तो एक महीने

का बोनस आपको और देना पड़ेगा। याने आपके मुनाफे में हमें ज्यादा हिस्सा मिलना चाहिए।' इस तरह मजदूर अपने लिए माँगता है और नहीं मिलता, तो हड़ताल करता है। इस लड़ाई में कोई शक्ति नहीं, कोई जान नहीं। इसमें से कुछ भी न निकलेगा। आज मजदूर की ताकत होगी, तो वह दो आने छीन लेगा, पर आपस में ही लड़ेगा। लेकिन अगर मजदूर, गरीब आपसी लड़ाई छोड़ दें और कहें कि 'हम अपने लिए कुछ नहीं, सबके लिए माँगते हैं, हमने पहले अपना छोड़ा है, अपने स्वामित्व का विसर्जन किया है, ग्रामदान में हमने अपनी जमीन भी दे दी, हम जो कमाते हैं, वह सबके सहयोग से पैदा हुआ है, उसमें सबका हिस्सा है। जितना हिस्सा हमारे बाल-बच्चों के लिए है उतना दे दो, इस तरह हम अपने धर्म के रास्ते पर चल रहे हैं और आप नहीं चलते हैं, तो हम आपके साथ इस पाप के भागी नहीं बनेंगे'। तो उस समय उनकी वह हड़ताल स्वार्थ का संघर्ष नहीं होता। वह कोई वर्ग-संघर्ष (क्लास-स्ट्रगल) नहीं, एक नैतिक संघर्ष होता है। तब धर्म और अधर्म, नीति और अनीति में लड़ाई होती है। तब गरीब कहेगा : 'हमने नीति, सत्य और धर्म का रास्ता पकड़ा है, हम तुम्हारे पाप के भागी थे, तुम्हारे साथ सहयोग करते थे और तुम्हारी शोषण की प्रथा में भाग लेते थे, चाहे स्वयं ही उसके शिकार क्यों न रहे हों। तुम्हारे मुनाफे में हम हिस्सा माँगते थे। लेकिन आज जब हमने अपना पाप छोड़ दिया है, तो हमें अधिकार प्राप्त हुआ है। अब हम तुम्हारे पाप के भागी नहीं बनेंगे।'

क्रान्ति की नयी और सही प्रक्रिया

अब हम इस पाप में हिस्सा लेने को तैयार नहीं हैं। डेढ़ सौ बरस के मजदूर-आन्दोलन का आज यह नतीजा है। इसमें

बुद्धिजीवी मजदूर हैं और श्रमजीवी भी हैं। आप सभी बुद्धि-जीवी मजदूर होंगे। आपमें से शायद थोड़े-से मालिक भी हो जायँगे—सौ में कोई एक-दो निकलें। मेहनत करके ही आप कमायेंगे, खायेंगे। श्रम करके ही जियेंगे। लेकिन वह बुद्धि का श्रम होगा। डेढ़ सौ बरस के आन्दोलन का यह नतीजा आपके सामने है। मेरा कहना है कि डेढ़ सौ बरस नहीं, पन्द्रह बरस भी यह आन्दोलन जिस तरह मैं कह रहा हूँ, जिस आधार पर मैं बतला रहा हूँ, उस आधार पर यदि चले, तो समाज की काया-पलट हो जायगी, नक्शा बदल जायगा। उसमें से जो समाज निकलेगा, वह सर्वोदय का समाज होगा।

क्रान्ति की यह नयी और सही प्रक्रिया है। यह एक 'सोशल डायनामिक्स' (सामाजिक गतिशीलता) का तत्त्व है, जिसे सत्य, अहिंसा, नैतिकता और कर्त्तव्य के आधार पर गांधीजी ने खड़ा किया है। आज विनोबाजी भी इसी तत्त्व, इसी शास्त्र या इसी विचार का प्रयोग कर रहे हैं। भूदान, सम्पत्ति-दान, श्रम-दान और बुद्धि-दान के माध्यम से हमें अपने स्वार्थ और स्वामित्व के विसर्जन का सबक सिखाया जा रहा है। यह विचार फैलाया जा रहा है कि भूमि किसीकी नहीं, सम्पत्ति किसीकी नहीं, सारे समाज को है, जो कुछ हमारे पास है, उसमें सबका हिस्सा है। हमारा कर्त्तव्य यही है कि हम अपनी सारी सम्पत्ति का परित्याग करें और समाज हमें जो दे, उससे अपना गुजारा करें। जब सब लोग अपने-अपने स्वत्व का परित्याग करेंगे, तो किसीका घटेगा नहीं। जब सभी एक-दूसरे से छीनने लगते हैं, तो कुछ का घर बहुत भर जाता है और कुछ का खाली हो जाता है। लेकिन सब, जब एक-दूसरे को देते रहें, तो किसीका घटेगा नहीं, कोई भूखा या दुःखी नहीं होगा, सब सुखी होंगे।

धर्म और कर्तव्य का वर्ण-परिचय

लेकिन आज हमारे लिए यह करना कठिन है। हम तुरन्त उस जगह पर नहीं पहुँच सकते। इसलिए एक छोटा-सा कदम विनोबाजी ने हमारे सामने रखा है। वे इस धर्म और कर्तव्य का वर्ण-परिचय करा रहे हैं। वे स्वयं बी० ए०, एम० ए० पढ़े हों, तो भी बच्चों को तो बी० ए०, एम० ए० की किताबें पढ़ायी नहीं जातीं। बच्चों को तो क ख ग ही सिखाया जाता है। आज विनोबाजी हमें इस सर्वोदयी नव-जीवन का 'क ख ग' सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैं कि भाई, मालकियत छोडनी है। छोडना सीखो और बड़े पैमाने पर छोडना सीखो। दो, चार, दस आदमी ही यदि छोड़ते हैं, सर्वस्व-दान और स्वामित्व का सम्पूर्ण विसर्जन भी कर देते हैं, उतने से तो समाज नहीं बदलेगा। सबका हित नहीं होगा। इसलिए लाखों, करोडो आदमियो को यह विसर्जन करना है। लाखों-करोड़ों आदमी यह काम कर सकें, इसके लिए एक कार्यक्रम बनाकर दिया है। कोई रुपये में एक पैसा या दो पैसे दे, लेकिन विचारपूर्वक यह समझकर दे कि जो हमारे पास है, उसमें सारे समाज का हिस्सा है। सम्पत्ति समाज की है, यह समझकर आज हम अपनी सम्पत्ति का विसर्जन करें। आज थोडा-सा विसर्जन कर रहे हैं, कल ज्यादा करेंगे, परसों और करेंगे। जैसे बूँद-बूँद से सागर भरता है, वैसे ही करोड़ों छोटे-छोटे सांकेतिक, लाक्षणिक और प्रतीक-स्वरूप दानों से, करोडों के छोटे-छोटे प्रयत्नों से एक ऐसा वातावरण पैदा होगा कि फिर समाज दूसरा कदम आगे उठाकर आगे बढ़ सकेगा।

क ख ग के बाद का चित्र

तब कैसा चित्र होगा? सारी जमीन गाँव की हो जायगी,

सब बराबरी के साझेदार हो जायँगे। वे जमीन का आपस में बराबर-बराबर बँटवारा कर लेंगे। जिसके घर जितने व्यक्ति हों, उस हिसाब से उन्हें निर्वाह के लिए जमीन मिलेगी। जमीन का मालिक वह नहीं, समाज होगा। वह उस जमीन को बेच न सकेगा। अगर वह खेती न करेगा और जमीन छोड़कर शहर चला जायगा, तो जमीन उससे लेकर दूसरे को दे दी जायगी। यह सारा नक्शा हमारे सामने है। साथ ही, यह भी नक्शा हमारे सामने है कि ऐसे ग्रामदानी गाँवों में गाँव के लोग कहेंगे कि हमारे बहुत-से सामूहिक काम अलग-अलग क्यों हों? हर बाप अपने बच्चों को शिक्षण दे, इसकी क्या जरूरत है? सारा गाँव ही बच्चों के शिक्षण का प्रबंध करे। सभी बच्चे गाँव के बच्चे हैं, तो शिक्षण के निमित्त सामूहिक खेती करने के लिए बीस एकड़ अलग निकाल दिये जायँ। घर में कोई बीमार हो, तो घर का मालिक उसकी सेवा, दवा-दारू कराये और घर में अगर सुविधा न हो, तो रोगी कराह-कराहकर यों ही मर जाय? ऐसा क्यों हो? गाँव की जमीन में से तीस एकड़ बीमारों की व्यवस्था के लिए निकाल दो जाय। आरोग्य, स्वास्थ्य, शादी-ब्याह और लगान देने के लिए कुछ एकड़ निकाल दी जाय। इस तरह से गाँव का एक सामूहिक खेत हो जायगा। हर किसान अपना हल-बैल लेकर उसमें काम करेगा। वहाँ जो पैदावार होगी, वह गाँव के 'धरम-गाले' मे इकट्ठी होगी, जिससे सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी। नये समाज का यह रूप हमारे सामने प्रकट हो रहा है।

फिर पटना शहर का जीवन भी कैसा होगा, यह देखिये! पटना शहर में जितने लोग हैं, सब सम्पत्ति-दान कर देंगे। सम्पत्ति-दान का यह पहला ही चरण है कि हम सम्पत्ति का

एक हिस्सा दें। लेकिन उसका अन्तिम अभिप्राय यही है कि हम अपनी-अपनी सारी सम्पत्ति का विसर्जन कर दें। यह जो हमारा मकान खड़ा है, वह सबका है। अगर मकान बहुत बड़ा है, उसमें काफी जगह है और हम थोड़े-से लोग ही रहते हैं, तो सारा मकान छेंककर हम क्यों रहें ? औरों के लिए बहुत छोटे-छोटे कमरे हैं, उसीमें उनका सारा परिवार रहता है—उसीमें खाना पकता, बच्चा भी पैदा होता और मरीज भी रहता है। सब कुछ उसीमें होता है, यह क्यों ? तब अपने घर के हिस्से में हम औरों को जगह दे देंगे। उस वक्त का सारा नक्शा किस तरह का होगा, हम आज ही नहीं कह सकते। क्या 'कम्युनिटी लाइफ' (मिली-जुली जिन्दगी) हो जायगी ? कहा नहीं जा सकता। हाँ, उसका कुछ धुँधला स्वरूप हमारे सामने जरूर है, लेकिन सारी रूपरेखा स्पष्ट नहीं है। आखिर ग्राम-राज का भी पूरा नक्शा हमारे सामने पहले कहाँ था ? पिछले चार-पाँच वरसों में यह नक्शा निखरता गया है।

अगर आज कोई कारखानेदार कह दे कि 'हमने सम्पत्ति का विसर्जन कर दिया, यह कारखाना अब हमारा नहीं रहा'। तब सोचना होगा कि वह कैसे चलाया जाय ? आज जहाँ राष्ट्रीय-करण हो जाता है, वहाँ कारखाने कैसे चलते हैं ? हमारे सामने सिन्दरी का कारखाना है। चितरंजन 'लाको मोटिव् वर्क्स' है। यह कारखाना कैसे चलता है, आपको मालूम है ? जनरल मैनेजर को तीन हजार, साढे तीन हजार रुपया मिलता है और मामूली मजदूर को साठ-सत्तर, अस्सी रुपया ! यह नक्शा है। जहाँ सम्पत्ति का विसर्जन हो जायगा, वहाँ भी क्या यही होगा ? हरगिज नहीं। निश्चय ही उसमें से कोई दूसरा ही नक्शा बनेगा। पर ये आगे की बातें हैं। जैसे-जैसे हमारा विचार तरक्की करता

जायगा, हमारे मन की शुद्धि होती जायगी, आज आँखों पर पड़ा परदा जैसे-जैसे हटता जायगा, वैसे-वैसे आगे का स्पष्ट दर्शन होता जायगा। आज की जो स्थिति है, वही ज्यों-की-त्यों बनी रहे, स्टेटस-को बनी रहे, ऐसा आपमें से कोई भी भाई नहीं चाहता होगा। कोई भी भाई यह भी नहीं चाहता होगा कि कुछ ही लोगों का भला हो। वह यही चाहेगा कि सब लोगों का भला हो, देश में एक भी भूखा, नगा, दुःखी या गरीब न रहे, यही आपकी भी इच्छा होगी। तब तो, आपका रास्ता विनोबा का रास्ता ही हो सकता है।

हमारा अपना अनुभव

जब स्वराज्य की लड़ाई का जमाना था, उस वक्त का हमारा अपना अनुभव भी यही था। इसी पटना कॉलेज में मैं भी पढ़ता था। आइ० एस-सी० का मैं विद्यार्थी था। शहर में जब गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन (नॉन को-ऑपरेशन) की लहर पहुँची, तो यहाँ (उस वक्त हसन इमाम साहब, अली इमाम साहब की कोठी तो नहीं थी, रोड पर उनकी जमीन थी, उसीमें) बहुत बडी सभा हुई। वह दिन तो हम कभी भूल नहीं सकते। उस दिन से हमारा सारा जीवन ही पलट गया। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद साहब का भाषण सुना। पंडित जवाहरलाल नेहरू भी मौजूद थे। उनका उस समय इतना नाम नहीं था और न जबान में वह ताकत थी, जो मौलाना साहब की जबान में थी। आग लगा देनेवाले लफ्ज थे उनके। जैसे गंगा मे आग लग जाय, ऐसी हालत हो गयी थी। इसी पटना कॉलेज से, साइंस कॉलेज से, बी० एन० कॉलेज से सैकड़ों विद्यार्थी दूसरे-तीसरे दिन निकले। हमारी आइ० एस-सी० की परीक्षा में बीस दिन बाकी थे। लेकिन प्रिन्सिपल साहब को लिखकर दे दिया, 'हम

लोगों ने यह समझ लिया है कि ये सारी शिक्षा-संस्थाएँ शैतानियत की संस्थाएँ हैं।' गांधीजी ने बहुत कठोर शब्द का प्रयोग किया था—'सेटॅनिक'। मौलाना साहब ने यही समझाया था कि 'भाई, संखिया की डली चूस रहे हो। जहर है, जो तुम्हें इन कॉलेजों में सिखाया जा रहा है। क्या तुम यह कहोगे कि जब तक तुम्हारे लिए हम दूध का गिलास लाकर नहीं रख देते, तब तक संखिया चूसना बन्द नहीं करोगे? यह तो नादानी होगी! अरे, मान लो कि राष्ट्रीय विद्यालय नहीं हैं, लेकिन कम-से-कम यह तो विद्या नहीं ही सीखनी चाहिए, जो तुम्हें यहाँ दी जा रही है।'

बस, असहयोग शुरू हो गया! देशभर में हजारों विद्यार्थियों ने अपने-अपने कॉलेजों की तरफ से अपनी पीठ फेरी और नया रास्ता लिया। वे भारत के गाँवों में पहुँचे और उन्होंने वहाँ की खाक छानना शुरू किया। हममें से बहुत सारे विद्यार्थी अन्त तक उसी मैदान में रहे और आज भी हैं। वह एक जमाना था। जो स्वाभिमानी, नौजवान देशाभिमानी विद्यार्थी थे, जिनके दिलों में देश-प्रेम की कुछ भावना थी, उन्होंने समझ लिया कि अंग्रेजों की नौकरी करना हमारा काम नहीं—चाहे ऊँची-से-ऊँची तनख्वाह ही क्यों न मिले, चाहे हमें 'डिप्टी मजिस्ट्रेटी' क्यों न मिल जाय। श्री मैथिलीशरणजी के शब्दों में, उस वक्त लोग यही मानते थे कि "स्वर्ग का सोपान है यह, हाय रे डिप्टीगिरी"। 'डिप्टीगिरी' भी बहुत बड़ी मालूम होती थी। उस जमाने में तो उन सब पर उन्होंने लात मारी और महात्मा गांधीजी के आवाहन पर सैकड़ों, हजारों नौजवान बाहर निकले।

निःस्वार्थ सेवा चाहिए

लेकिन आज वह बात नहीं रही, अब तो स्वराज्य हो गया है।

विद्यार्थियों ने समझ लिया कि अब काम पूरा हो गया। अब क्या काम है, सिवा इसके कि हम अपना पेट भरें, खायें-कमायें? अंग्रेजों का राज्य था, तो सरकारी नौकरी करना देशद्रोह माना जाता था। पर आज तो अपना राज्य है, स्वराज्य है। ऐसी हालत में सरकारी नौकरी, चाहे वह पुलिस की थानेदारी ही क्यों न हो, देशसेवा है। आज नौजवान ऐसा मानता है। जब अपना राज्य है, तो हम सरकारी नौकरी करना देशद्रोह कैसे कह सकते हैं? लेकिन हम यह जरूर कहेंगे कि आज देश का सबसे बड़ा काम या सबसे बड़ी सेवा सरकारी नौकरी करना नहीं, वकालत करना या डॉक्टरी करना नहीं है। हमें निःस्वार्थ भाव से सेवा करनी है। अपना पेट भी काटना पड़े, तो पेट काटकर सेवा करनी है, प्रत्यक्ष सेवा करनी है। दुर्भाग्य है कि आप सबका ध्यान ऊँची नौकरियों, सत्ता और राजनीति की तरफ लगा है। कारण, हम मानते हैं कि जो कुछ हो सकता है, राजनीति या सत्ता के द्वारा ही हो सकता है।

देश का कार्य सत्ता और कानून से नहीं

सचमुच हमारा यह बड़ा दुर्भाग्य है कि इस तरह के हमारे मूल्य हो गये। इसमें हमारे नेताओं का भी हाथ है। देश का यह दुर्भाग्य हुआ कि स्वराज्य की लडाई के जितने चोटी के नेता थे, वे सब सत्ता के पदों पर चले गये। और उन्होंने यह एक विचार समाज में फैला दिया कि सबसे बड़ा काम यही है, सबसे ऊँचा स्थान यही है और सबसे बड़ी सेवा यही है। केवल महात्मा गांधी अपवाद-स्वरूप थे। दुनिया के और देशों में जब क्रान्तियाँ हुई, तो क्रान्ति के सेनापतियों ने अपने हाथ में शासन लिया। अमेरिका में जार्ज वाशिंगटन

जगह में आ जायेंगे। बल्कि मैं तो कहूँगा कि इस तरह वे ऊँची जगह से और ऊँची जगह पहुँच जायेंगे। लेकिन आज हमारे मूल्य इस तरह से उलट-पलट गये हैं कि लोग मानते हैं कि जयप्रकाश नारायण ने राजनीति छोड दी, तो देश का बड़ा भारी अपकार हो गया! अब कैसे होगा? अब विरोधी दल कैसे बनेगा? आदि-आदि बातें लोग सोचते हैं। अरे बाबा, राजनीति की क्या शक्ति है, वह कितना कर सकती है? अगर जवाहरलालजी भी कानून बना दें कि 'सब कोई सच बोलो', तो कोई सच नहीं बोलेगा। यह तो समझा करके ही किया जा सकता है।

नया समाज बनाना है

इसलिए मैं आपका इस सेवा-क्षेत्र के लिए आवाहन करना चाहता हूँ। आज क्या होता है? जो जानदार, प्राणवान्, शक्तिमान् विद्यार्थी हैं, वे तो जाते हैं आइ० ए० एस० में, एयर फार्स में और जिनकी शक्ति कम है, जिनमें उतना प्राण और उतनी बुद्धि नहीं है, उन्हें लगता है कि हमें कहीं कुछ नहीं मिलता, तो चलो भूदान का ही काम करें। आज ऐसा उल्टा क्रम बना हुआ है। आपको तो इस बात पर हँसी आयी। यह बात रोने की है, हँसने की नहीं। महात्मा गांधीजी प्रधान मन्त्री की गद्दी पर नहीं बैठे, क्योंकि समाज में निःस्पृह सेवा की शक्ति सबसे बडी शक्ति है। क्या पढ़े-लिखे लोग इस तरह की निःस्पृह सेवा नहीं करेंगे? उन्हें कहना चाहिए कि 'अपने लिए हम कुछ नहीं माँगते हैं, कोई पद नहीं माँगते हैं, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तक में कोई पद नहीं मांगते, फिर पार्लियामेण्ट के मेम्बर या मन्त्री बनने की बात तो छोड़ ही दें। हम निःस्पृह भाव से सेवा-कार्य, विचार-प्रचार का कार्य और क्रान्ति का कार्य करेंगे। हमें समाज को पलटना है। नया समाज बनाना है।'

सर्वोदय का समाज दिल्ली में पंडित जवाहरलालजी नेहरू कानून द्वारा नहीं बना सकते, क्योंकि सर्वोदय-समाज तब तक बन ही नहीं सकता, जब तक कि स्वार्थों का परित्याग नहीं होता। स्वार्थों का परित्याग कानून से नहीं हो सकता। कानून तो कहता है कि इतना 'हैसियत टॅक्स' दे दो, पर यार लोग हजारों रुपया वकीलों को फीस देकर उनसे यह सीख लेते हैं कि इन्कम टॅक्स देने से कैसे बचें। वे दो बहियाँ बनाते हैं, एक इन्कम टॅक्स अफसरों के लिए रखते हैं, तो दूसरी अपने लिए। कानून तो कह रहा है कि स्वार्थ छोड़ो, जितना तुमने कमा लिया है, उतना मत रखो, कुछ छोड दो। उसमें समाज का अधिकार है, क्योंकि समाज की मदद से वह पैदा हुआ है। लेकिन वह अपनी मर्जी से नहीं छोड़ता। अगर कानून उससे जबर्दस्ती छुड़ा भी ले—आपके पास लाख रुपया है और कानून कहे कि भाई, हजार रुपया से ज्यादा नहीं रख सकते। बाकी सब दे दो, इस तरह कानून छीन भी ले, आपके पास हजार एकड़ जमीन है, कानून कहे कि पचास एकड़ से ज्यादा नहीं रख सकते, इसलिए छीन ले—तो भी उस जमीन और उस धन के लिए हमारे मन में जो मोह है—वह तो कानून से नहीं जायगा न? हम तो छाती पीटेंगे कि इन लोगों ने हमारी जमीन छीन ली, हमारा धन छीन लिया, बाप-दादों की कमाई छीन ली, ये कैसे दुष्ट लोग हैं? हममें प्रतिकार की भावना होगी, हम इनसे बदला लेने की सोचेंगे। सारांश, कानून हमारे मोह को कभी नहीं मिटा सकता।

क्रान्ति : पहले अपने जीवन में

इसलिए, अगर आप सच्ची क्रान्ति करना चाहते हैं, तो पहले अपने जीवन में क्रान्ति कीजिये। आज तो हर कोई और बहुत-से विद्यार्थी भी कहेंगे कि जमीन का बँटवारा होना चाहिए,

१० या २० एकड से ज्यादा जमीन किसीके पास नहीं रहनी चाहिए, लेकिन अपने घर की ५०० एकड़ बाँटने को कोई तैयार नहीं होते। कहते हैं कि 'जब कानून बनेगा, सबकी जमीन बँटेगी, तब हम भी बाँटेंगे।' आखिर विनोबा कह रहा है, गांधी कह रहा है कि यह क्या बात है? इससे तो कुछ निकलेगा ही नहीं। आज किसीकी ताकत हो गयी और उसने छीन लिया, तो कल किसी और की ताकत होगी और वह छीन लेगा। क्या छीनने का ही सिलसिला जारी रहेगा? क्रान्ति तो देने से होगी, छीनने से नहीं। वह विचारपूर्वक देने से होती है, भीख या दान समझकर देने से नहीं, हर्गिज नहीं। विनोबा नहीं कहते कि हम आपसे भीख माँगते हैं। वे तो हक माँगते हैं, विचार समझाते हैं। विचार समझकर देना चाहो, तो हम लेते हैं, नहीं तो आपका एक पैसा नहीं लेना चाहते। एक धूर जमीन हम आपकी नहीं चाहते, रखे रहिये आप। साराश, मुख्य चीज है विचार का परिवर्तन। इसलिए, विद्यार्थी भाइयो, आपको यह नहीं समझना चाहिए कि जब तक स्वराज्य की लडाई थी, तभी तक त्याग का जमाना था, तब सेवा का जमाना था। अब स्वराज्य हो जाने के बाद भोग का जमाना है, कमाने और खाने का जमाना है। नहीं, नहीं। आज इस देश में त्याग और तपस्या की जितनी आवश्यकता है, उतनी स्वराज्य की लडाई के जमाने में भी नहीं थी। आज देश आपसे त्याग की माँग कर रहा है। यह माँग नहीं कर रहा है कि आइ० ए०एस० बनो। मैं तो यह कहूँगा कि जो जानदार तरुण हैं, प्राणवान् तरुण हैं, जो फर्स्ट क्लास फर्स्ट पास होते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि वे कहें कि 'हम मोटा पहन और मोटा खाकर, आधा तन ढँककर भी सेवा करेंगे। हम आइ० ए० एस० में नहीं जायँगे।' जिन्हें सेवा के क्षेत्र में जगह न मिले, वे आइ० ए० एस० में जायँ।

हम आज के सिलसिले को एकदम उलट देना चाहते है। हमारे देश में पहले क्या था ? क्षत्रियो का राज्य, राजाओ का राज्य, और ब्राह्मण ? निःस्पृह भाव से सेवा और लोक-संग्रह करनेवाला, अपने लिए सग्रह न करनेवाला, ज्ञान-उपार्जन करनेवाला और ज्ञान बॉटनेवाला। किसी जाति-विशेष से हमारा मतलब नहीं है। जाति उसकी बन गयी दुर्भाग्य से। लेकिन निःस्पृह और अपरिग्रही सेवक ही समाज मे सबसे ऊँचा माना गया। गांधीजी इस देश के प्रधान मन्त्री नहीं बने। उनका कोई मकान नहीं था। जो कुछ भी था, सब छोड़ वे लँगोटी बॉधकर चलते थे, लेकिन विश्ववन्द्य हुए। जब उनकी हत्या हुई, तो ब्राजिल, अर्जेण्टाइना और जाने कहॉ-कहॉ, शोक-सभाएँ हुई। दुःख से सारी दुनिया हिल गयी। मानव की यह खूबी है कि वह सत्ता के सामने झुकता तो है, लेकिन डर से झुकता है। सही माने में श्रद्धापूर्वक उसका सिर त्याग, सत्य और धर्म के सामने झुकता है और आदर से झुकता है।

इसलिए अगर आपके आज के जीवन-मूल्यो मे परिवर्तन हो, क्रान्ति हो, तब तो हम आपको क्रान्तिकारी मान सकते हैं। नहीं तो आप झूठे क्रान्तिकारी हैं। आप 'इनक्लाब जिन्दाबाद' का नारा भले ही लगायें या पटना शहर में तोड़-फोड़ करें, फिर भी आप क्रान्तिकारी नहीं हैं। क्रान्ति के लिए अपने जीवन के आदर्शों को आप बदलें। आप शोषण और विषमता के खिलाफ हैं, लेकिन रात-दिन आपके दिमाग में यही बात उठती होगी कि हमें अच्छी-से-अच्छी नौकरी कैसे मिले ? इस तरह आप भी शोषकों की जमात में ही प्रवेश पाना, दाखिल होना चाहते हैं। आप विषमता के खिलाफ हैं, लेकिन चाहते हैं कि नौकरी हमे ऐसी मिले कि ३५०) से तनख्वाह शुरू हो जाय। उधर विषमता

के खिलाफ भी पुकार मचाते हैं। सारा मिथ्यावाद है और इसी मिथ्यावाद का नतीजा यह मिथ्याचार है।

ये महल : गरीबों की छाती पर

हम सब गांधी नहीं हो सकते, हालॉकि गांधीजी कहते थे कि 'कोई भी गाधी हो सकता है'। हम साधारण मनुष्य हैं। गाधीजी की बात भी सही थी, फिर भी हमारी कमजोरियाँ हैं। हममें से हर कोई गांधी नहीं बन सकता और न हर कोई विनोबा बन सकता है, लेकिन हमारा यह कर्तव्य है कि जहाँ तक हम उस दिशा में बढ़ सकते हैं, बढ़ें। अभी मैं सुन रहा था, हमारे एक मित्र—विनोबाजी के आश्रम के एक साधक, सिन्ध के रहनेवाले एक नवयुवक भाई, जो यहाँ कहीं बैठे होंगे—कह रहे थे : "विनोबाजी ने 'समन्वय-आश्रम' के नाम से बोधगया में एक आश्रम का निर्माण किया, जिसकी नींव राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू ने रखी। उस समन्वय-आश्रम में तो झोपड़ियाँ ही हैं, फिर भी दूर-दूर के यात्री आते हैं।" वे कह रहे थे कि मॅक्सिकन दम्पति वहाँ पहुँचे और उन्होंने आश्रम के एक भाई से पूछा कि 'चन्दीगढ़ के बारे में आपकी क्या राय है ?' उस भाई ने कहा कि 'चन्दीगढ़ के बारे में मेरी क्या राय पूछते हैं। चन्दीगढ़ है पजाब की राजधानी।' उस दम्पति ने कहा कि 'हमें भारत और भारतीयों के लिए, गांधी तथा पण्डित जवाहरलाल नेहरू के देश के लिए बड़ा आदर था। कितनी ऊँची-ऊँची बातें वे कहते हैं। लेकिन जिस देश में इतनी गरीबी है, इतने भूखे-नगे लोग हैं, वहाँ राजधानी के लिए अफसरों, मन्त्रियों और आपके दफ्तरों के लिए इतने ऊँचे-ऊँचे महल बनाये जायें ? गरीब की छाती पर महल बने हैं ये।'

आज हमारे मूल्य ही बिगड़ गये हैं। नयी दिल्ली में जाता हूँ, तो दिल बैठ जाता है। क्या है यह भारत की राजधानी ! सारे सूट-बूट पहनकर बड़ी-बड़ी मोटरों में दौड़ते हैं ! बड़े-बड़े बँगले हैं ! हमारी सभी बहनें निकलती हैं जार्जेट की, खूब कीमती विदेशी साड़ियाँ पहने हुए और ओंठ रँगे हुए—फैशन में चूर ! क्या हालत है यह भाई ! क्या यही गरीब देश की राजधानी है ? हमारे सारे मूल्य पलट गये। जब आवड़ी मे कांग्रेस ने प्रस्ताव किया कि 'समाजवादी ढॉचा हमारा उद्देश्य है।' तो विनोबा ने कहा : 'मुझे बड़ी खुशी हुई कि कांग्रेस जैसी एक बड़ी पार्टी ने, जिसके हाथों मे सत्ता है, ऐसा निश्चय किया।' लेकिन पहला सवाल जो हमारे मन में उठा, वह यह था कि समाज का समाजवादी ढॉचा आपने कैसा बनाया ? आपने अपने घर मे कैसा समाजवादी ढॉचा बनाया ? आपने इन बड़े-बड़े महलो को छोड़ा या नहीं ? या उन्हींमें बैठकर इस गरीब देश का शासन कर रहे हैं ?

यह कैसा गोरख-धन्धा ?

हममे से हर कोई दोषी है, हर काई इस पाप का भागी है। हम मध्यम-वर्ग के भाइयो में हरएक कम-वेशी दूसरो का हक छीन रहा है। देश में इतनी कमी है कि जो हम खा और पहन रहे हैं, उसमें भी दूसरो का हिस्सा है। हमारी रोटियों पर उन गरीबों के दॉत लगे हैं, जिन्हे एक दाना मयस्सर नहीं। लेकिन आज अगर हमारी यह शक्ति नहीं कि हम गांधी और विनोबा की तरह त्याग कर सके, तो जितना भी त्याग कर सकें, करें। यह साधना हमें करनी है। हमें ऊपर ऊँचे-ऊँचे महलों की तरफ देखना नहीं है, बल्कि झोपड़ियों की तरफ देखना है। अपने जीवन को हम जितना भी झुका सकते हों, नीचे को ले जा सकते हों,

उतना झुकाना आज हमारा कर्तव्य है। यह देश की सबसे बड़ी सेवा है। हम आप नवयुवक विद्यार्थी भाइयों से सबसे पहले यह अपेक्षा रखते हैं। आज हम लखनऊ-दिल्ली में विद्यार्थी भाइयों को देखते हैं कि वे फैशन में चूर हैं। वे सूट-बूट पहने रहते हैं, बेशकीमती विलायती कपडा पहनते हैं। गरीब देश और वहाँ के नौजवानों का यह हाल। और फिर क्रान्ति का नारा उनकी जबान पर। आखिर यह कैसा गोरख-धन्धा है? कैसी आत्म-प्रवचना है? कैसा धोखा है यह?

क्रान्ति का बिगुल

आज समय आ गया है। विनोबा ने क्रान्ति का बिगुल बजा दिया है। क्रान्ति का बिगुल दिल्ली में, लोकसभा में, पटना की विधानसभा या सेक्रेटेरियेट में नहीं बज रहा है। वहाँ दफ्तर और लालफीता है, उसी लालफीते में देश का भाग्य और कसकर जकड़ता जाता है। दिन-पर-दिन लालफीते की बढ़ती होती जाती है। वटवृक्ष की तरह अफसरशाही बढती जाती है। एक पेड़ हुआ, उसमें से एक शाखा नीचे आयी, फिर उसमें से एक पेड़ हुआ, फिर वही। राक्षस की तरह चारों तरफ यह अफसरशाही बढ़ती जा रही है। मालूम होता है, यह सारी लोकशाही को खा जायगी, देश को निगल जायगी। आप भी उसी अफसरशाही (नौकरशाही तो इसको कहना ठीक नहीं, अफसरशाही ही कहना चाहिए) मशीन के पुर्जे होना चाहते हैं, यह क्रान्ति नहीं है। आप मैजिस्ट्रेट और पुलिस के अफसर बनकर समाज में क्रान्ति नहीं लायेंगे। अगर ईमानदारी से काम करेंगे, तो देश की थोड़ी-सी सेवा आप कर सकेंगे, इससे हमें इनकार नहीं। लेकिन उनमें आज भी तो ईमानदार लोग हैं, उनसे पूछिये। वे महसूस करते

हैं कि वे बहुत थोड़ा कर पाते है। ऐसा जाल बिछा है, जिसमे से वे निकल नहीं पाते। उनकी आत्माएँ दबी जा रही हैं, कुचली जा रही हैं। इसलिए क्रान्ति का बिगुल वहाँ नहीं, जनता के घरो, गाँवो और शहरों की गलियो तथा झोपड़ियो मे बज रहा है।

सारांश, विनोबा ने यह बिगुल बजाया है। उसका कहना है कि 'सन् सत्तावन के अन्त तक कम-से-कम देश के गाँव-गाँव मे (देश के कुल पाँच लाख अट्ठावन हजार गाँवो मे) भूमि का वितरण तो हो जाय, क्रान्ति का पहला चरण तो पूरा हो जाय।' आज कोई हमसे बहस करे कि 'यह कैसे होगा? माँगने से जमीन नहीं मिलेगी', तो मैं कहूँगा, यह बेकार बात है। सोते को जगाया जा सकता है, जागे हुए को कैसे जगाया जाय? जो समझना नहीं चाहता, उसे समझाया कैसे जाय? जिसकी समझ में बात नहीं आती, उसे हम समझा सकते हैं। लेकिन यह तो समझना ही नहीं चाहता। अरे बाबा, पाँच वर्ष का अनुभव है। अनुभव स्पष्ट कह रहा है कि जहाँ काम हुआ, जहाँ सच्चे कार्यकर्ता गये, जहाँ यह सदेश पहुँचा, वहाँ जनता आज पीछे नहीं है। हम और आप पीछे हैं, पर जनता हमसे आगे है। गाँव-गाँव मे जमीन का बँटवारा हो सकता है, लेकिन कार्यकर्ता चाहिए। कार्यकर्ता जिस वर्ग से आते हैं उसका ध्यान आज दूसरी तरफ लगा है। इसी ध्यान को मोड़ने के लिए विनोबा गाँवो में चल पड़ा है।

बलिदान नहीं, जीवन-दान

विनोबा ने देश की सबसे बड़ी सेवा यह की है कि जहाँ सबका ध्यान सत्ता की ओर लगा था, वहाँ उसने उसे सेवा की ओर मोड़ दिया। आपको देश का निर्माण करना है, नया भारत बनाना है। पसीना बहाना है। बलिदान नहीं, जीवनदान करना है। आज समाज आपसे बलिदान या प्राणो की आहुति नहीं माँग

रहा है। भगतसिंह ने प्राणों की आहुति दी। प्राणों की आहुति की मॉग उस समय थी। किन्तु आज प्राणों की नहीं, जीवन की, वुद्धि की, श्रम-सेवा की आहुति की मॉग है। सारा जीवन समाज की सेवा में लगे, ऐसा आप संकल्प करें। जितना आप त्याग कर सकते हों, करें। ज्यादा त्याग करते हों, तो कम त्याग करनेवालों को नीचा मत देखो। अहकार करोगे, तो सारी तपस्या झूठी हो जायगी। उसमें से कुछ नहीं निकलेगा। ऐसे लोग भी यहॉ हैं, जिन्होने वहुत वडा त्याग किया है। उनका त्याग अधिक है, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन वे अगर अहकार करें, तो उनका सारा त्याग निष्फल होगा। जो ज्यादा कर सकता है, वह दूसरों को प्रेमपूर्वक उठा ले। सव आगे वढ़ें। एक कदम उठाया हो, तो दूसरा उठाओ। आज हम गॉव के गरीव, दुःखी किसानों से क्या मॉगें ? हॉ, आपसे मॉगेंगे। इसीलिए हम आपसे मॉग करने आये हैं।

तीन मॉगें : १. सम्पत्तिदान

हम आपसे पहली किस्त में तीन मॉगें करते हैं। यह पहली किस्त है, दूसरी किस्त के लिए फिर से हम आयेंगे। तीसरी किस्त मॉगने की जरूरत नहीं पड़ेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। पहली किस्त में वहुत छोटी मॉग हम आपके सामने रखते हैं। अभी दो सौ विद्यार्थियों ने सपत्ति-दान दिया। पटना शहर में हजारों विद्यार्थी होंगे। करीव आठ हजार विद्यार्थी कॉलेज के हैं। हाईस्कूल के विद्यार्थियों की वात तो छोड़ ही दीजिये। इन आठ हजार में से हमें दो सौ विद्यार्थी मिले। इसलिए नहीं कि ये दो सौ भाई निःस्वार्थी हैं और वाकी सव स्वार्थी हैं। लोग काम करनेवाले कम थे, इन्हीं दो सौ भाइयो तक पहुॅच पाये। अगर वे यह सदेश और सपत्तिदान का फार्म लेकर हर होस्टल, हर

बोर्डिंग हाऊस में पहुँच पाते और सबको समझाने का मौका मिलता, तो मैं समझता हूँ, हमें आज आठ हजार संपत्तिदान मिल सकते। विद्यार्थी इतना स्वार्थ क्यों करेगा ? इस पर विद्यार्थी पूछ सकता है कि मैं तो कमाता नहीं, फिर संपत्तिदान कैसे करूँ ? मगर विद्यार्थी खर्च तो करता है। जो खर्च करता है, उसमें भी समाज का हिस्सा है । आपके माँ-बाप, भाई-बंद या और भी जो कोई आपके संरक्षक हों उन्होंने, जो आपके खर्च के लिए दिया है, उसमें समाज का हिस्सा है। इसलिए हमारी पहली माँग यह है कि हर विद्यार्थी यह संकल्प करे कि हम महीने में जितने रुपये खर्च करते हैं, उतने पैसे संपत्तिदान मे देंगे। रुपये मे एक पैसा। पचास रुपये खर्च करते हो, तो पचास पैसे निकालेंगे। बहुत छोटी-सी बात हुई। अगर आप हफ्ते में एक सिनेमा देखना छोड़ देंगे, तो उसीसे काम निकल जायगा। आप अपने माता-पिता से यह न कहें कि "हम सपत्तिदान कर रहे हैं, इसलिए 'मनी-आर्डर' कुछ ज्यादा कर दो। ऐसा नहीं।" तब तो वह उन्हींका संपत्तिदान हो गया, आपका नहीं। आप अपना पेट काटकर दीजिये। कुछ-न-कुछ आप त्याग कीजिये। चाय का एक प्याला ही कम पीजिये या और कोई चीज कम कीजिये। दूध का एक गिलास ही कम पी लीजिये। गरीब विद्यार्थी कहेंगे कि हमें दूध का दर्शन भी नहीं होता और सिनेमा भी हम नहीं देखते, तो उनसे हम कहते हैं कि ठीक है भाई, नहीं जाते, तो कोई बुरी बात नहीं, अच्छी ही बात है। हाँ, दूध नहीं पी सकते, यह जरा दुःख की बात है। विद्यार्थियो को दूध तो मिलना ही चाहिए, बुद्धिजीवी को तो दूध जरूर मिलना चाहिए। लेकिन नहीं मिलता। अस्तु, आप सचमुच गरीब है, तो ठीक है। फिर भी आप बीस-पचीस या तीस रुपया महीना, जितना भी खर्च करते हों, उसमें से ही

एक पैसा निकाल लो। और भी अपना पेट काट लो। लेकिन हर विद्यार्थी संपत्तिदान करे। जो आपने इकट्ठा किया, वह क्या होगा?

सपत्तिदान कोई चन्दा नहीं है। हम यह नहीं चाहते हैं कि आप रुपया हमारे पास या भूदान-समिति में भेज दें। सर्वोदय-छात्र-परिषद् में आप भेज दें, यह भी हम नहीं चाहते। पैसा आपके पास ही रहे। मान लीजिये, पटना शहर में दो सौ, चार सौ या जितने सम्पत्तिदानी हों, सब मिलकर अपनी एक कमेटी बना लें और सभी अपना रुपया वहाँ इकट्ठा करें। फिर सभी सम्पत्तिदानी फैसला कर ले कि इतना रुपया इकट्ठा हुआ और हर महीने में इतना इकट्ठा होता है, इसे हम इस प्रकार से खर्च करेंगे। कोई चाय-पार्टी में तो खर्च नहीं करना है न? सेवा में खर्च करना है। हम यह देते हैं, सोलह आना आप पर छोड देते हैं। आप जैसा चाहे, खर्च करें। हर महीने में खर्च करें या इकट्ठा करके छह महीने मे एक बार खर्च करे।

२. समयदान

हाँ, तो हमारी पहली माँग सपत्तिदान की हुई सरी माँग है, समय-दान की। हम आपका समय चाहते हैं। छुट्टी के समय में ये गर्मी की लम्बी छुट्टियाँ होनेवाली हैं। परीक्षाएँ भी हो जायँगी। तो, इस छुट्टी के समय कम-से-कम एक महीना आप सब हमे दे। अधिक दे, तो और भी अच्छा, लेकिन कम-से-कम एक महीना अवश्य दें, उसमें पहला काम हम यह करेंगे कि जिले-जिले में या कई जिलों को मिलाकर कम-से-कम एक सप्ताह के लिए विद्यार्थियो के शिविर खोलेंगे। अगर आप अधिक समय दें, तो दो सप्ताह के लिए भी शिविर खुल सकता है। उसमे हम अच्छी तरह से विचार समझायेंगे। किस तरह से काम करना है, वह समझायेंगे। उसके बाद आपको टोलियाँ बनेगी और वे

टोलियाँ गाँव-गाँव घूमेंगी। उसे नगरो में भी घूमना होगा, लेकिन शायद अभी गाँव में ही घूमना होगा। वहाँ आपके झोले में कुछ साहित्य रहेगा, जिसे आप बेचें। 'भूदान-यज्ञ' साप्ताहिक-पत्रिका और वह उर्दू की पत्रिका 'भूदान तहरीक' रहेगी। उसके आप ग्राहक बनायें और उसे बेचें। साहित्य-प्रचार करें, भाषण दें। पेड़ के नीचे किसीके दरवाजे पर बैठकर लोगो को समझायें। गीत गायें, नारे लगायें, भूदान प्राप्त करें, संपत्ति-दान प्राप्त करें, भू-वितरण करें, ग्रामदान प्राप्त करें—यह सारा काम आप करें। लेकिन अगर आप स्वयं सपत्ति-दान न करेंगे और दूसरो से भूदान या संपत्ति-दान माँगेगे, तो आपकी आवाज में कुछ भी शक्ति न होगी, आप खुद ही माँग न सकेंगे। इसलिए समय-दानी के लिए तो अनिवार्य है कि वे संपत्तिदान करे। नहीं तो फिर उनका समयदान लेकर हम क्या करेंगे? जो विचार नहीं समझते और विचार के अनुसार आचार नहीं करते, उनके लिए दूसरों का आचार-विचार वदलना सर्वथा असंभव है। अध्यापकों से भी मेरा निवेदन है कि छुट्टियो में वे भी अपना समयदान करें। अपने विद्यार्थियों की टोलियाँ लेकर वे ही घूमे। भूदान के कार्यकर्ता भी रहे, अध्यापक भी रहे और विद्यार्थी भी रहे। घर-घर यह आवाज गूँज जाय। मई और जून के महीने मे सारा विहार सर्वोदय के नारों से गूँज उठे।

३. खादी

हमारी तीसरी माँग यह है कि आपमें से हर विद्यार्थी भाई और विद्यार्थी बहन यह संकल्प करें कि हम आगे से अपने लिए खादी का ही कपड़ा खरीदेंगे। अब हम मिल का कपड़ा नहीं पहनेंगे, भले ही वह स्वदेशी मिल का क्यो न हो। हम सदा खद्दर ही खरीदेंगे। यह माँग हम आपसे क्यो कर रहे हैं, इसके

समझाने में काफी समय लगेगा। जितना हमने समझाया, उतना भी अगर आपने समझा हो, तो यह थोड़ा-बहुत समझ में आ सकता है। खादी और ग्रामोद्योग के पीछे एक समाज-शास्त्र है, समाज का एक दर्शन है। समाज की रचना किस प्रकार की जाय, जिससे सर्वोदय हो, शान्ति हो, सुख हो, सारे संसार में विकेन्द्रित जीवन हो ? इन प्रश्नों में मैं अभी नहीं पड़ता। नीचे-से-नीचे स्तर पर उतरकर जो अपील की जा सकती है, वही मैं कर रहा हूँ। आज टी० टी० कृष्णमाचारी जिस प्रकार खादी पहनते और उसका समर्थन करते हैं और सी० डी० देशमुख भी आज जिस कारण खादी का समर्थन कर रहे हैं, उसी कारण से मैं आपको खादी पहनने के लिए कह रहा हूँ। वह कारण है, देश की भयंकर बेकारी! पाश्चात्य विद्या सीखे विद्वान् भी आज धीरे-धीरे इसी जगह पर आ रहे हैं, जैसे कि देशमुख और कृष्णमाचारी वगैरह आये हैं। अगर हम भारत की बेकारी की समस्या हल करना चाहते हैं, तो दूसरा कोई तरीका नहीं, सिवा इसके कि ग्रामोद्याग, गृह-उद्योग और छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे हों।

ग्रामोद्योग क्यों ?

इसके कई कारण हैं। एक कारण तो यह है कि आज देश में पूँजी कम है। हम सालभर में जितना पैदा करते हैं, उसमें से खाने-पीने और उपयोग मे ले लेने के बाद जो बच जाता है, वह राष्ट्रीय बचत है, वही पूँजी है। उसमें से कितना बिड़लाजी के पास है और कितना गरीब के पास है, यह अलग सवाल है— वह पूँजी के वितरण का सवाल है। लेकिन देश की जो बचत हुई, वही बचत बहुत कम है। ऐसी हालत में यह संभव नहीं की हम बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे खड़े करें, और अपने देश के लोगों को

हम धन्धा, नौकरी दें। देश के बड़े-बड़े स्टॅटिशियनों ने हिसाब लगाया है कि एक कारखाने में, और वह भी मामूली हलके कारखाने मे (जैसे कपड़े के, चीनी के कारखाने में) एक आदमी को काम देने के लिए कम-से-कम दस हजार रुपये की पूँजी चाहिए। और बड़े कारखानो में (जैसे लोहे के कारखानो में, जिन्हें भारी उद्योग कहते हैं) काम देने के लिए एक आदमी को, हर मजदूर के पीछे पचीस हजार की पूँजी चाहिए। आज सौ-सौ करोड़ की पूँजी से लोहे के कारखाने बन रहे हैं और बनते जायँगे। इससे तो सौ-सवा सौ की जगह डेढ़ सौ लाख मजदूर हो जायँगे। लेकिन देश मे तो करोड़ो लोग बेकार हैं। हर आदमी के लिए दस हजार से लेकर पचीस हजार तक की पूँजी कहाँ से आयेगी? है इतनी पूँजी कहाँ अपने देश में?

अपने देश के साधनों को देखते हुए द्वितीय पंचवर्षीय योजना कोई छोटी योजना नहीं बनी। अड़तालीस सौ करोड़ रुपया खर्च होगा पाँच वर्ष में। 'पब्लिक सेक्टर' की बात करता हूँ। तेईस सौ करोड़ रुपया अलग। यह अड़तालीस सौ करोड़ रुपया पब्लिक सेक्टर मे कहाँ से आयेगा, इसका पूरा-पूरा हमें पता नहीं है। चौबीस सौ करोड़ रुपये का पता है कि वह कर्ज रेविन्यू, रेलों की आमदनी आदि से आयेगा। बाकी चौबीस सौ करोड़ कहाँ से लायेंगे, मालूम नहीं। तय किया गया है कि इनमें बारह सौ करोड़ (बारह अरब) रुपया नोट छापकर पैदा करेंगे। यह खतरनाक बात है। हम इसका विरोध नहीं करते, पर सभी समझ रहे हैं कि नोट छापना खतरनाक बात है। जितने नोट छपते हैं, अगर साथ-साथ उतना देश का धन नहीं बढ़ता, तो इन्फ्लेशन (मुद्रास्फीति) हो जाती है, महँगाई बढ़ जाती है। इस तरह तो बड़ी भारी मुसीबत खड़ी हो जायगी।

'डेफिसिट फिनान्सिग' बारह सौ करोड रुपये की। फिर बाकी का बारह सौ करोड कहाँ से आयेगा? कहते हैं, आठ सौ करोड विदेशों से कर्ज लेंगे। वह भी खतरनाक बात है। उसके भी हम विरोधी नहीं, लेकिन खतरा उसमें भी है। कौन जानता है कि आठ सौ करोड़ रुपया मिलेगा या नहीं, फिर आज बात अनिर्णीत ही रह गयी। कहाँ से आयेगा, भीतरी या बाहरी जरियो से, उसमें उन्होने दोनों लिख रखा है। हमारी एक छोटी-सी योजना का आज यह हाल है। आज हमारे लिए हर बेकार आदमी को बड़े उद्योग में लगाना असभव है।

क्या गांधीजी प्रतिगामी थे?

वास्तव में हमारा दिमाग कुछ आसमान से नीचे उतरना चाहिए। गांधीजी कोई 'प्रतिगामी व्यक्ति' नहीं थे। आप कहेंगे कि यह तो आणविक युग है, और इसमें ये लोग चर्खे और ग्रामोद्योग की बात करते हैं, पर क्या करें? करना ही पड़ता है, लाजिमी ही है, हमारे देश के लिए इसके सिवा कोई चारा ही नहीं है। क्या आप अमेरिका की नकल कर सकते हैं? दस हजार से पचीस हजार तक का यह खर्च तो अपने देश में जिस तरह की मशीनें हैं, उन्हे देखकर आँका गया है। अभी मैंने अखबारो मे पढ़ा, अमेरिका मे एक कारखाना बना, तो उसमें पचहत्तर लाख की लागत लगी। छोटा-सा कारखाना था। पचहत्तर लाख की लागत से वह 'गैस प्लॅण्ट' बना। और उस कारखाने को चलाने के लिए मजदूर कितने आये? दो मजदूर। वे मामूली मजदूर नहीं, विशेपज्ञ थे। लेकिन एक मजदूर के पीछे साढ़े सैंतीस लाख की पूँजी लगी। क्या हम इतनी 'पूँजी की लागत' ('कॅपिटल इन्वेस्टमेंट') कर सकते हैं? इतनी पूँजी लगा सकते है? मोटी अक्ल की बात है। आज इस देश मे करोडो लोग बेकार पडे हैं। दूसरी बात

जमीन और आदमी के अनुपात की है। अमेरिका मे हर आदमी के पीछे वारह एकड़ जमीन है, तो हमारे देश में एक एकड़। किसी-किसी प्रान्त में एक आदमी पीछे एक एकड़ से भी कम जमीन है। जो अर्थशास्त्री इस मोटी वात को नहीं समझता, उसे अर्थशास्त्री भी कैसे कहा जाय ? इतना यह अनुपात हमारे खिलाफ है, फिर हम क्या करेगे ? आज करोड़ों लोग—अस्सी फी सदी लोग—गॉवों में पड़े हैं। गॉवों के ही लोगो के वोट से हमारा राज्य बनता है। किसी भी लोकशाही में अस्सी फी-सदी का जो हित है, वही बड़ा माना जायगा न ? 'सर्वोदय' की वात नहीं कह रहा हूँ। बहुमत के राज की वात है। बहुजन के अधिक-से-अधिक सुख की जहॉ वात है, वहॉ तो अस्सी फी-सदी की बात होनी चाहिए न ? भारत के देहाती अस्सी फी-सदी लोगों का जीवन-स्तर कैसे उठेगा, कभी सोचा है आप लोगो ने ? शहर में चाहे आप लोहे का कारखाना खोलें, चाहे और कोई कारखाना, शहर में आप चाहे कितने भी उद्योग वढ़ायें, धन वढ़ायें—गॉवो में उसे वॉटने तो नहीं जायेंगे ?

क्या यह कभी सम्भव है ?

अगर आप यह सोचते होंगे कि हम वड़े-वड़े कारखाने खोलेंगे और गॉव से लोगों को लाकर उनमे रख देंगे, तो अनुपात अनुकूल हो जायगा, (जहॉ आदमी पीछे एक एकड़ है, वहॉ अपने-आप दो एकड़ हो जायगा, देहात के लोगों का जीवन-स्तर दुगुना ऊँचा हो जायगा) तो क्या यह कभी सम्भव है ? यह जो योजना वनी है, उसमें वताया गया है कि पॉच वरस में देश की आवादी, हर साल तीस लाख के हिसाब से, डेढ़ करोड़ और वढ़ जायगी। उस डेढ़ करोड़ मे से एक करोड़ ऐसे लोग होंगे, जिन्हें आपको नया काम देना पड़ेगा। आज जो वेकारों की संख्या है,

उनमें एक करोड़ की वृद्धि हो जायगी। इस तरह नौकरी चाहनेवाले बीस लाख लोग हर साल बढ़ते हैं। पाँच बरस के अन्दर द्वितीय पचवार्षिक योजना की अवधि में एक करोड़ बढ़ जायँगे। इन एक करोड लोगों को अगर शहर में रख लिया जाय, सबको काम अगर शहर में दे दिया जाय, तो गाँवों का जीवन-स्तर ज्यों-का-त्यों रह जाता है। लेकिन ये एक करोड बढ़े हुए लोग, शहर में नहीं आयेंगे। यह योजना खुद कह रही है कि आज जो गाँवों की जन-सख्या है, उसमें बीस लाख और बढ़ जायगी। गाँवों में जितने लोग हैं, वे कम नहीं होंगे। मेरा खयाल है, इनका हिसाब बहुत सही नहीं है। जितने लोगों को ये समझते हैं कि काम दे देंगे, नहीं दे पायेंगे। भूमि का भाव और बढ़ेगा। ऐसी हालत में गाँव के लोगों का जीवन-स्तर कैसे बढेगा ?

ग्रामोद्योग ही त्राण

गाँव में पैदावार तो बढ़नी चाहिए। ग्रामोद्योग होने चाहिए। गाँव गाँव में आपको धन्धे देने पड़ेंगे। घर-घर में उद्योग देना पड़ेगा। खेती करनेवाला हर किसान सालभर में छह महाने बैठा रहता है। छह महीने की कमाई बारह महीने खाता है। उसे छह महीने धंधे देने ही पड़ेंगे। यह भी संभव नहीं है कि वह छह महीने देहात में रहे और छह महीने कारखाने में आकर काम करे। उसे ऐसा काम मिल नहीं सकता। इस तरह स्पष्ट है कि देहात में रहनेवाले लोग देहात में ही रहेंगे। उनके जीवन का स्तर शहरों में बढ़नेवाली पैदावार से नहीं बढ़ेगा। हमारे देश की योजना बनानेवाले यह भी नहीं करेंगे कि देहात मे जो पैदा होता है, उसकी कीमत बढ़ा दें और शहर में जो पैदा होता है, उसकी कीमत घटा दें। व्यापार का काँटा गाँव के लोगों के हक में झुका दें। दुनियाभर में रूस आदि सब जगह जितना विकास हुआ है, गाँव की छाती

पर बैठकर हुआ है। किसानों का शोषण हुआ है। किसानों को महँगा दिया गया और उनसे सस्ता लिया गया। अगर व्यापार का पलड़ा झुकेगा, तो वह उनके खिलाफ ही झुकेगा। पूँजी का जो निर्माण होगा, वह गाँवों के शोषण से ही होगा, इस बात का पूरा-पूरा खतरा है। इसलिए गरीब देहाती लोगों के जीवन के स्तर को उठाने के लिए आज कोई दूसरा रास्ता नहीं। बेकारों को धधा देने के लिए गृह-उद्योग, ग्राम-उद्योग के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं। जहाँ यन्त्र-उद्योग के लिए दस हजार से पचीस हजार की पूँजी चाहिए, वहीं बाँस का चरखा डेढ़ रुपये में मिलता है। आठ आने में एक पौण्ड रूई मिल जाती है। आठ आने की रूई और डेढ़ रुपये का चरखा। दो रुपये की पूँजी से एक आदमी का धंधा चल जाता है। आठ घंटे सूत कातकर छह आने पैसे वह कमा लेता है, जब कि आज एक पैसा भी नहीं कमाता। दो रुपये की पूँजी से छह आने की रोज उसकी आमदनी हो जायगी। श्रम खूब लगा—पूँजी कम लगी।

यदि आप नहीं समझेंगे, तो वह देहात का गरीब समझेगा? देश के लिए आपको त्याग करना होगा। जो विद्यार्थी मिल का कपड़ा पहनता है, वह विचार नही करता। गाधीजी कोई पागल नहीं थे कि खादी की बात इस जमाने में करते थे। इसलिए, ये तीन हमारी माँगें हैं। हमारी माँगो पर आप कान देंगे, ध्यान देंगे और इन तीनो को आप स्वीकार करेंगे।

—जयप्रकाश नारायण

एक वर्ष का दान

: ४ :

विद्यार्थी-समाज में हम ऐसा विचार पैदा कर सकते हैं कि भाई, ठीक है, ये राज्यवाले जो करते हैं, करें और ठीक ढग से करें, तो अच्छी बात है। अगर वे गलत ढग से करते हैं, तो हम उनकी गलती का विरोध भी करें।—हॉ, कहीं शीशे वगैरह न फोड़ें, न दूकानों में और बसों में आग लगायें। लेकिन कानून द्वारा या राज्य-शक्ति द्वारा समाज को आगे नहीं ले जाया जा सकेगा, यह हम ठीक से समझा दें। मेरा खयाल है कि विद्यार्थियों में कम्युनिज्म या सोशलिज्म के लिए जो आस्था थी, वह आज कम हो गयी है, वह आकर्षण कम हो गया है। अब इसकी जगह पर उनके सामने कोई नयी चीज रखी जाय, तो उसको वे ग्रहण करेंगे। मेरा अपना अनुभव ऐसा है कि जब विद्यार्थी-समाज में यह विचार हमने रखा, तो देखा कि वे इसको समझना चाहते हैं। उनकी रुचि भी होती है और हम लोगों के भाषण के बाद वहाँ कोई स्थानीय कार्यकर्ता, उनके कोई अध्यापक या नागरिक हों, जो उनसे कुछ संपर्क रखे और यह विचार उनको समझा दें, तो अगर हमारी सभा में ५००-१००० विद्यार्थी इकट्ठे हुए, तो हो सकता है कि इस स्वाध्याय-मडल में ५०-६० विद्यार्थी तो नियमित रूप से आयें। ऐसा आज से दस वर्ष पहले नहीं था। तब विद्यार्थियों के लिए दूसरे आकर्षण थे। आज अहिंसा की बातें लोगों के सामने रखी जायँ, तो एक अनुकूलता है। क्योंकि हिंसा के ये जो नये शस्त्र तैयार हुए हैं, सब लोग समझते हैं कि ये तो सारी दुनिया को मिटा देंगे। तो, यह एक अच्छा वातावरण बना है, जिससे हम फायदा उठा सकते हैं।

'५७ की पुकार

एक कार्यक्रम हम रखें और खासकरके सन् '५७ के संदर्भ में रखें। विद्यार्थी अपने को क्रांतिकारी और इनकलाबी कहते हैं और वे हैं भी। अगर हमारे नवयुवक परिवर्तन नहीं करना चाहे, तो समाज बदलेगा कैसे ? जो नयी पीढ़ी हो, उसमें विद्रोह और क्रांति की भावना अवश्य होनी चाहिए, नहीं तो विकास ही नहीं होगा। समाज में स्थितिवाद नहीं रहे, तो भी समाज नहीं चलेगा। हर कोई जो आज करता है, वह कल दूसरा करे, तीसरा करे, तो कोई स्थिरता ही समाज में नहीं रहेगी। पर दोनों शक्तियों को साथ-साथ चलना है। आज के कम्युनिस्ट लोग पुराणप्रिय हो गये हैं। रूस के और रूसवादी जितने कम्युनिस्ट हैं, वे पुराणप्रिय हो गये हैं। उनके सामने एक-दम कोई सीधा प्रश्न रख दिया जाय, जैसा मैंने भारत के कम्यु-निस्टों के सामने प्रश्न रख दिया, तो वे उसका सीधा मुकाबला नहीं करते। वे सोचने से घबराते हैं कि सोचेंगे, तो उनकी जो मान्यताएँ है, उनको छोडना पड़ेगा। तो, कल के क्रान्तिवादी आज के स्थितिवादी हो जाते हैं। यह तो इतिहास का एक बहुत बड़ा प्राथमिक सबक है। अतः विद्यार्थी-समुदाय को समझाकर उनमें जो क्रान्तिकारिता या परिवर्तन के लिए प्रेरणा है, उसको हम सही रास्ते पर मोड़ सकते हैं। हम कह सकते हैं कि भाई, 'क्रांति-क्रांति' करते हो, तो चलो, यह सन् '५७ क्रांति का वर्ष है, क्रांति का युग है, आ जाओ इसमें। एक नारा हम दे सकते हैं कि भाई, एक वर्ष के लिए पढ़ना-लिखना सब छोड़ दो, एक वर्ष स्कूल-कॉलेज बन्द हो जायँ। पहले तो मैं छोटे-छोटे बच्चों के लिए क्रांति का कोई कार्यक्रम मानता नहीं था। लेकिन उस दिन विमलाबहन से बच्चों की पदयात्रा की कहानी सुनी। बहुत प्रेरणादायक है,

वह कहानी* । क्रांति का एक कार्यक्रम हमको इस वर्ष सभी विद्यार्थियो के सामने रखना चाहिए।

विद्यार्थियों की दृष्टि बदल जायगी

इस भूदान-आदोलन का समर्थन पडित जवाहरलालजी ने भी किया है, काग्रेस-पक्ष ने भी किया है और बहुत-से मुख्य मन्त्रियों ने तथा दूसरे मन्त्रियों ने किया है। मैं नहीं कह सकता कि विश्वविद्यालयों के जो कुलपति हैं, उनमे से कितने लोगों ने इसका स्वागत किया है, क्योंकि वे जरा पुराणवादी लोग होते हैं। इसलिए विद्यार्थियों की श्रद्धा वे आज प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। शिक्षक-विद्यार्थी के दो अलग-अलग ट्रेड यूनियन्स बन गये हैं। उन दोनों में टक्कर होती है। मालिक और मजदूर का-सा रिश्ता पैदा हुआ है। नहीं तो विद्यार्थी 'इन टर्म्स आफ स्ट्राइक' सोचता ही नहीं। लेकिन जिन लोगों ने इसका समर्थन किया है और जो इसको समझते हैं कि नैतिक क्राति ही मानव-समाज को बचा सकती है, नैतिक क्रांति के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है, उनके पास हम जायँ। पडितजी ने भी भूदान के बारे में काफी गहराई में जाकर बात कही है। हम तो यह भी अपेक्षा रखते हैं कि सरकार स्वय कहे कि भाई, हमारे विद्यालय एक वर्ष तक बद होंगे। विद्यार्थी जायेंगे, क्राति के इस काम में लगेंगे। मान लीजिये कि आज लडाई हो जाय, हिंदुस्तान और किसी दूसरे देश के बीच मे, तो लडाई मे जाने की उम्र के जितने विद्यार्थी हैं, जायेंगे या नहीं ? आज भी यूरोप मे लड़ाई हो जाती है, तो ऑक्सफोर्ड-केंब्रिज के विद्यार्थी जाते हैं या नहीं ? करीब-करीब सारा शिक्षण बन्द हो जाता है। आज यहाँ लडाई से बड़ी

* देखिये, इसी पुस्तक में 'क्रान्ति-यज्ञ मे बाल-गोपाल' लेख, पृष्ठ ७०।

चीज हो रही है। अपने देश में एक वर्ष के अन्दर इतना बड़ा काम अगर हो जाता है, तो इस देश का जो नैतिक और सामाजिक जीवन है, वह कितना ही ऊँचा उठ जाता है। यही काम अगर तलवार से किया जाय, गाँव-गाँव में आग लगे और तेलंगाना सारा भारत बने, तो क्या निष्पन्न होगा? या कानून से सब बाँट दिया जाय, तो उसमे से क्या निष्पन्न होगा? लेकिन ऐसा हो कि विद्यार्थी घूम रहे हैं, नारे लगा रहे हैं, गीत गा रहे हैं और न किसीके घर जाते है, बल्कि पेड़ के नीचे सो जाते हैं, मिट्टी खोद लेते हैं और कुछ अपना कमा लेते हैं और चलते हैं तथा विचार दे रहे हैं—चारो तरफ, कहीं बैठ करके जमीन बाँट रहे हैं, ऐसा नहीं, बल्कि अपनी बात समझाते चले जा रहे हैं, देशभर में एक तूफान उठा है और विद्यार्थी घूम रहे हैं—इसमे से जो निष्पन्न होगा, उसके बाद अगर विद्यार्थियो के मन मे विद्यालयो का मोह रह भी जाय, विद्यालयों मे आयें भी, तो एक वर्ष में उनका कितना परिवर्तन हो जायगा? कहाँ से कहाँ चले जायँगे? वही विद्या, जो वे पढ़ते हैं, वह किन नजरो से, किन कानों से वे सुनने लगेंगे और देखने लगेंगे? सारी दृष्टि उनकी बदल जायगी, उस एक वर्ष मे। इस नीति के चलते देश का लाभ होगा, विधायक शक्ति पैदा होगी।

एक वर्ष का दान

हम इण्टर साइंस में पढ़ते थे। स्कॉलरशिप भी हमको मिलती थी। पटना कॉलेज उस वक्त साइंस कॉलेज था। अच्छे विद्यार्थियो मे हम लोग गिने जाते थे। पर सब इम्तहान वगैरह भूल-भाल करके चले आये। हम लोगों ने यह नहीं कहा कि भाई, बीस दिन की परीक्षा रही है, बीस दिन में पास कर लो। मौलाना ने कहा कि भाई, सखिया की डली तुम चूस रहे हो—इसलिए कि तुमको

दूध का गिलास नहीं मिल रहा है। तुम्हारे लिए कोई राष्ट्रीय विद्यालय नहीं है, क्या इसीलिए तुम जहर पीते रहोगे ? यह क्या वात है ? तो हम लोगों ने निश्चय किया कि अच्छा भाई, जहर छोड दो, फेंको इसको। और हम लोग इम्तहान देने के लिए वीस दिन भी नहीं रुके। उन लोगों में से कुछ लोग कुछ दिनों के वाद गये भी वापस, कुछ नहीं भी। पर लगता है, वह महात्मा गांधीजी का एक नारा देना दूसरी वात थी और हम लोग उस तरह से कहें, तो वह दूसरी वात होगी। विनोवाजी आज इस वात को कहें, तो इसमें कहीं अधिक शक्ति होगी। विद्यार्थियों के लिए आज एक साल की मॉग हम कर सकते हैं कि सालभर आप अपना इस क्रांति के लिए दो, ताकि '५७ के अन्त तक गॉव-गॉव में जमीन का वॅटवारा गॉव के ही लोगों के हाथों से हो जाय, कोई भी भूमिहीन न रह जाय। देहातों में वहुत चर्चा है कि '५७ में उलट-फेर होगा। क्या होगा, कोई ठीक-ठीक नहीं जानता है। लेकिन कुछ होगा, एक ऐसा खयाल '५७ के वारे मे फैला है। तो इस भूमिका में इस विचार की ओर आप सकेत करें, आप खुद समझें-वूझें, दूसरों को समझायें, इस विचार को फैलायें। इस विचार के अनुसार विद्यार्थी का अपना जीवन-परिवर्तन हो और पहला कदम उसमें यह हो कि विद्यार्थी सम्पत्ति-दान करे, मिल का कपड़ा भी पहनता है, तो पहने, पर वाद में धीरे-धीरे खादी की तरफ जायगा वह। लेकिन आज यह प्रश्न है कि इस विचार को मानते हो क्या ? समाज के तुम अग हो और समाज तुमको पढा रहा है, समाज तुमको दे रहा है। तुम्हारा कर्तव्य है, इस चीज को समझ लेने का और उस पर आचरण करने का। आचरण करने का एक तरीका हम तुमको वताते हैं। हम समझते हैं कि चारो तरफ से यह आवाज आये

कि एक वर्ष विद्यार्थी दें, तो कोई असम्भव बात नहीं है। हममें कोई मौलाना आजाद की तरह से अपनी वाणी से आग लगानेवाला न भी हो, तो भी जमाना हमारे साथ है, अतः यह हो सकता है।

विद्यार्थियों के बीच, उद्घाटन-भाषण
खादीग्राम, २८-१२-'५६

—जयप्रकाश नारायण

क्रान्ति-यज्ञ में बाल-गोपाल : ५ :

सामूहिक सघन पदयात्रा-समाप्ति के समारोह के लिए मुझे छिंदवाडा बुलाया गया था। हमारे एक नवयुवक अनुभवी साथी श्री 'मानव' जी पर पदयात्रा-संचालन का भार था। मानवजी ता० १९ को मुझे शिविर में ले गये। एक घास-फूस से बनाये हुए मामूली शामियाने में पदयात्री बैठे थे। व्यासपीठ पर बैठते ही पदयात्रियों को देखकर मैं अवाक् रह गयी। आँखें मलकर फिर देखा और फिर हैरान हुई। क्योंकि मेरे सामने जो ९० पदयात्री बैठे थे, वे सबके सब बालक थे। १८ साल की उम्र से अधिक उम्र का शायद ही कोई हो। १२ साल की उम्र से १८ साल की उम्र तक के ९० बच्चे मेरे सामने शान से सीना तानकर बैठे थे।

दूसरी तरफ छिंदवाडा के विभिन्न हाईस्कूलों के लगभग ३०० छात्र एवं अध्यापक बैठे थे। अध्यापिकाएँ और लगभग ५० छात्राएँ भी बैठी थीं। मैंने मानवजी को, जो पदयात्रियों के अगुआ हैं और जिनकी भी उम्र मुश्किल से २५-२६ होगी, पूछा—"क्यों ये लडके ही पदयात्रा में गये थे? इनके साथ कोई प्रौढ़ नागरिक नहीं थे? एक सप्ताह तक ये लड़के ही तहसील में घूमते रहे?" जवाब मिला—"हाँ, लडके ही घूमते रहे। छिंदवाड़ा के नागरिकों में से कोई भी सहयोग देने या पदयात्रा के लिए तैयार नहीं थे। ९० लडके लगभग ३० टोलियों में बँटे थे।"

इनमें हिन्दू, सिख, मुसलमान, सभी धर्मों एवं जातियों के बालक हैं। पदयात्रियों के टोली-नायकों ने अपने-अपने जो रोम-हर्षक अनुभव सुनाये, वे सुनते समय कभी व्यथा से हृदय

आक्रोश करता, कभी कौतुक से हृदय उछल पड़ता, कभी आनन्द से दिल रो उठता, तो कभी विषाद से दिल बैठ जाता।

एक १३ साल का सिख लड़का खड़ा हुआ। टोली-नायक था। हाफ-शर्ट और हाफ-पैण्ट पहने हुए, पगड़ी बाँधे वह बाल-वीर मेरे पास आकर खड़ा हुआ। चेहरा थकान से सूखा हुआ, आँखों में दुःख की छाया थी। आवाज मे रूठे हुए दिल का दर्द था। कहने लगा—"हम क्रांति-कार्य के लिए निकले, लेकिन हमको किसीने टीका नहीं किया, माला तक नही पहनायी। गाँवो में दो दिन तक खाने को नहीं मिला। कभी दस, कभी चौदह मील हम चले। हमने साहित्य वेचा, भू-दान-गीत गाये, विचार समझाया। लेकिन संत विनोवा का काम ठीक से नही कर पाये, क्योंकि सात दिनो में हमें सात एकड़ ही जमीन मिली।" इतना कहकर वह लड़का बिलख-बिलखकर रोने लगा।

मुझसे रहा नहीं गया। उठकर उस लड़के को मैंने गले लगा लिया। उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"मेरे भाई, तुमने बहुत बड़ी सेवा की है। संत विनोवा तुमसे बहुत प्रसन्न होंगे। तुमको सात एकड़ जमीन कैसे मिली, किसने-किसने कैसे दी, यह मेरी समझ में नहीं आता है। तुम बहादुर हो। आज मैं तुमको माला पहना दूँगी, तिलक लगाऊँगी–अब तो हँसोगे।"

लड़के की आँखो से आँसू बह रहे थे। कुरते के छोर से आँसू पोछते ही मुस्करा उठा। विजेता की भाँति सभा की ओर गरदन टेढ़ी करके उसने देखा। तालियों की गड़गड़ाहट से सभा ने अनुमोदन किया।

दूसरा एक मुसलमान लड़का खड़ा हुआ। उसकी टोली मे दो हिन्दू लड़के थे। जमीन लगभग १३ एकड़ मिली थी। अनुभव सुनाते हुए वह कहने लगा—"एक गाँव में गये। पटेल, पटवारी,

कोटवार किसीने भी सहयोग नहीं दिया। टोली के भोजन की भी व्यवस्था नहीं की। पेट में चूहे कूद रहे थे। फिर भी आगे बढ़े। सभा की। उस गाँव में पटेल का आदेश था कि भूदानवालों को कोई मदद न करे। अर्थात् वहाँ भी खाने को नहीं मिला। आटा खरीदकर तीनों लडकों ने गाँव के बाहर रसोई बनायी। १३-१४ साल के लडके। रसोई बनाने का अभ्यास नहीं। तीन पत्थर रखे। जगल से लकडी चीरकर लाये। चूल्हा जलाया। टिक्कड़ बने। हाथ जलते थे। चूल्हा सुलगाते समय धूएँ से जी घबडाता था। फिर भी टोली-नायक ने रसोई बनाकर साथियों को खिलाया।

तीसरा बालवीर खडा हुआ। यह टोली नायक हिंदू था और उसको टोली में दो मुसलमान लडके थे। टोली को ८० रुपयों का साधन-दान मिला था। "साम्ययोग" के पाँच ग्राहक टोली ने बनाये थे। जमीन २३ एकड़ मिली थी। टोली-नायक की उम्र थी १४ वर्ष। उसके साथी थे अन्दाजन १५ साल की उम्र के। खादी का कुरता और खादी का ही पाजामा पहने हुए था। विशाल ललाट तथा बड़ी-बड़ी आँखों में से तीव्र बुद्धि का तेज झलक रहा था। मुस्कराता हुआ, सन्त विनोबा का वह बाल-साथी बोल उठा—

"आखिर भू-दान का विचार समझने मे क्या अडचन है, मैं समझ नहीं सकता। देश मे कोई गरीब न रहे, यही तो विनोबा चाहते हैं न ? घर में हम सब प्रेम से रहते हैं। जो होगा, वह बाँटकर लेते हैं, तो फिर जमीन बाँट लेना कौन-सी कठिन बात है। मैं तो भाई, चाहता हूँ कि हर गाँव की जमीन बँट जाय। सब मिलकर रहे, मिलकर मेहनत करे। मुझे पदयात्रा मे बहुत आनन्द आया। काम तो मेरे साथियो ने किया। मेरे साथी बहुत अच्छे थे · ।"

सभा के अध्यक्ष श्री त्रिवेदी की आँखे सजल हो उठीं। किसने इस लड़के को क्रान्ति का अर्थ समझाया? कितनी आसानी से उसने भूक्रान्ति का सार आत्मसात् कर लिया। चौथा बाल-वीर उठा। यह तो निरा बच्चा था। उसकी उम्र बारह वर्ष से भी कम थी। मधुर स्वर मे भू-दान-गीत गाकर उसने सभा को सद्गदित कर दिया। बाद में कहता क्या है—"सुन्दर-सुन्दर भू-दान-गीत गाने से ही तो लोग समझ जाते थे। भाषण देने की भी जरूरत नहीं पड़ती थी!"

पॉचवे बाल-वीर की टोली को जंगलों में घूमना पड़ा था। एक दिन वह अपने साथियों को लेकर जंगल पार कर रहा था। उस समय तहसीलदार साहब उस जगल में शिकार खेलने आये थे। लड़के जिस पगडण्डी से आ रहे थे, उसके नजदीक गोली चली। धांय! धॉय! आवाज आते ही लड़के चौंक उठे। शायद शेर हो। शायद घायल हुआ हो। यदि इधर ही शेर आये, तो क्या करे? किधर जायँ? चारो ओर घना जगल! पलभर के लिए तीनों लड़के बुत बनकर जहॉ के तहॉ एक-दूसरे से सट-कर खड़े हुए। फिर उनमें से एक लड़का धीरे से बोल उठा—"देखो, भगवान् का काम करने हम निकले हैं। बस! उसका ही नाम अब लेना चाहिए। फिर जो होना हो, सो होगा।" स्कूल मे जो दैनिक प्रार्थना होती थी, वही तीनो लड़के ऑखें बन्द करके, हाथ जोड़कर गाने लगे। समस्त प्राणों को इकट्ठा करके प्रार्थना की।

लड़का सभा से कहने लगा—"प्रार्थना गाते-गाते हमको भीतर से हिम्मत आयी। डर भाग गया।" एक-दूसरे का हाथ पकड़कर वे आगे बढ़े। उस दिन से ईश्वर है और अपने नज-दीक है, ऐसी श्रद्धा उनके मन मे पैदा हुई।

हर टोली के किस्से लिखूँगी, तो एक खासा उपन्यास बन जायगा। इसलिए सिर्फ और एक क्रान्ति-वीर की कहानी लिखकर यह समाप्त करूँगी।

एक बाल-वीर टोली-नायक कहने लगा—"हमको भी एक दिन खाना नहीं मिला। इस कदर भूख लगी थी कि पूछो मत। लेकिन गाँव के पटेल ने सबको बतलाया था कि भू-दानवालों की मदद नहीं करनी है। गाँव पटेल से डरता था। जब चौबीस घंटे फाका करना पड़ा, तो दूसरे दिन चलते समय पैर लड़खड़ाने लगे। सोचा कि चलो, छिंदवाडा लौट चलें। भूख सहन करने की आदत तो है नहीं। आगे गाँव में यदि भोजन नहीं मिला, तो फिर लौटने की तैयारी की। इतने में विचार आया कि हम छिंदवाड़ा से नजदीक हैं, इसलिए संकट आते ही लौट रहे हैं, लौट सकते हैं। लेकिन जो हमारे साथी दूसरी टोलियों में गये हैं, उनको भोजन नहीं मिलेगा, तो क्या वे लौट सकेंगे? वे तो छिंदवाड़े से बहुत दूर हैं। वे नहीं लौट सकेंगे। फिर हमारा लौट जाना कैसे उचित होगा? नहीं—लौटना नहीं है। आगे बढ़ना चाहिए।"

लडकों ने बिस्तर सिर पर रखे। छिंदवाड़ा की दिशा में बढ़नेवाले कदम छिंदवाडा की ओर पीठ फेरकर दूसरी दिशा में आगे बढ़ने लगे। टोली में १२ साल का एक सिख लड़का था। उसके पैरों में छाले पडे थे खून निकलता था। २-३ मील चलने के बाद पैर फिसलने से वह गिर पडा। कमर में चोट आयी। फिर भी ज़िद करके वह टोली के साथ आगे बढ़ा। टोली को ८ मील चलना था। सिख लडके को भूख के मारे चक्कर आने लगे और वह दो चार गिरा। फिर भी साथियों के साथ आगे बढ़ता चला गया। टोलीनायक ने उस सिख लडके को बुलाया। प्रसन्न-वदन, सुन्दर,

सतेज लड़का। पैरो में कहाँ छाले पड़े, दिखाने लगा। हाथ में, कुहनी में कहाँ चोट आयी, गर्व के साथ दिखाने लगा।

मेरे मुँह से बरबस आह निकली। मेरी तरफ मुड़कर सिख बालक कहने लगा, "कुछ नहीं बहनजी, मामूली चोटें है। दो-चार दिन में ठीक हो जायँगी। हम खेलते हैं, तो क्या गिरते नहीं? तब क्या चोट नहीं आती?" कहकर वह खिलखिला-कर हँसने लगा। फिर से तालियाँ बजीं! 'शाबास!' 'शाबास!!' की धूम मची।

तीन घटे तक पदयात्रियों के अनुभव मैं सुन रही थी। सन्त विनोबा का क्रान्ति-कार्य अब बाल-गोपालों की लीला बन गया, यह देखकर किसको हर्ष नहीं होगा? ९० बालवीर एक सप्ताह मे २५० एकड़ जमीन के दानपत्र लाये। 'साम्ययोग' के २४ ग्राहक बनाये। २९०) का साधन-दान प्राप्त किया। १६०) के सपत्ति-दान प्राप्त किये। टोली-नायकों का आत्मनिवेदन समाप्त होने पर पदयात्रियों के लिए मालाएँ लायी गयीं। हरएक पद-यात्री को मैंने अपने हाथ से माला पहनायी। तिलक लगाया, अक्षत लगायी। माला पहनते समय लड़के मारे खुशी के नाच उठते थे। अकड़कर खड़े होते थे। मैं तिलक ठीक से लगा सकूँ, इसलिए झट-से अपने बाल पीछे हटा देते थे। एक-एक की दिव्य बाल-लीला का वर्णन करने की क्षमता मुझमें नहीं है। क्या ही अच्छा होता कि मैं साहित्यिक होती या कवि।

—विमला

आज का जीवनाधार बदलना होगा

आखिर दुनिया की इस स्थिति के निराकरण का क्या दूसरा भी कोई तरीका है ? विनोबा की बातें अव्यावहारिक और दकियानूसी हैं, तो फिर आपके सामने दूसरी कौनसी राह है ? मैंने भी बहुत विचार किया, लेकिन मुझे कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखायी देता। एक तरफ मनुष्य मनुष्य को खतम करने के लिए तुला है और सारी शक्ति और सम्पत्ति आग को भड़काने में ही झोंक रहा है, तो दूसरी तरफ लोग शाति की प्यास में तडप रहे हैं। बडे-से-बड़े देशों के लोगो की यह भूख है। पर एक तरफ हम खतरनाक हथियार बनाते जायँ और दूसरी ओर शाति-शांति चिल्लाते रहें, यह कितनी विरोधी बात है ? क्या मनुष्य के भाग्य में यही बदा है कि वह सतत लडता रहे ? शाति और सन्धि की चर्चा करता रहे और फिर से लड़ता ही रहे ? क्या इस सतह से वह ऊपर उठ ही नहीं सकता ? क्या ऐसा मानव-समाज बन ही नहीं सकता कि जहाँ युद्ध की चर्चा न हो और लडाइयाँ ही खतम हो जायँ ? बड़ा गम्भीर सवाल है। क्या इसका कोई जवाब है ?

युनाइटेड नेशन्स में सारे राष्ट्र इकट्ठे हो और सर्वसम्मति से एक चार्टर बनाकर सब उस पर दस्तखत कर दें कि अभी अब हम युद्ध नहीं करेंगे, तो क्या उसीसे मानव-समाज में शाति का राज्य कायम होगा ? आज इसीकी चर्चा और प्रयत्न हो रहे हैं। लेकिन इतिहास बताता है कि इतने से कभी काम हुआ नहीं और "हम लडेंगे नहीं," यह तय करने के बाद भी लडाइयाँ हुई ही हैं। सन्धियों पर हस्ताक्षर करनेवाले न अमर रहे, न वे सदा शासन में ही रहे। तब यदि दूसरे लोग आये, तो वे क्या करेंगे, कौन कह सकता है ? दुनिया मे अनेक विचारकों ने इसके लिए

अनेक राहे बतायी हैं। लेकिन वे 'ग्रेटेस्ट गुड ऑफ दी ग्रेटेस्ट नंबर' (अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख) तक ही पहुँच पाये हैं। पर इससे समस्या कभी हल नहीं हुई, न होगी। इसलिए हमें अब व्यक्तिगत दृष्टिकोण से नहीं, सामाजिक दृष्टिकोण से ही सोचना होगा और पूरे मानव-धर्म का ही विचार करके उसका पालन करना होगा। वह किसी पंथ, जाति और देश में सीमित नहीं रह सकता। उसमें विश्वमानवता का ही सन्देश निहित है। भूदान-यज्ञ को हम इसी दृष्टि से देखें। चन्द लोगों को जमीन या संपत्ति दिला देने का ही स्थूल अर्थ उसमें नही है।

आवाहन

विद्यार्थी कहते हैं, हमारी परीक्षा का काल निकट है। ठीक है, परीक्षाएँ दे दीजिये, अगर उसका भी मोह है! लेकिन फिर एक साल का सारा समय इसमे लगा दीजिये। सही परीक्षा तो यही है। सन् '२२ की जनवरी में मौलाना आजाद का भाषण पटना में हमने सुना, जब कि हमारी परीक्षाएँ बहुत निकट थीं। लेकिन दूसरे दिन जो दृश्य देखा, कभी वैसा नहीं देखा होगा। सब छात्र पढ़ाई, परीक्षा आदि भूलकर राजेन्द्र बाबू के डेरे पर आँसू भर-भर कर भारतमाता की सेवा की आशाएँ लेकर चले जा रहे हैं। फिर हमने सन् '४२ में देखा कि सैकड़ों विद्यार्थी गोलियाँ खा रहे हैं। आज भारतमाता की सेवा की आशाएँ दुनिया की सेवा की आशाएँ बन गयी हैं। आज हमें दुनिया में विश्वशांति लानी है, इसलिए आज आपका पुनः व्यापक आवाहन हो रहा है! इस आन्दोलन का भार किसी हद तक हम लोगो ने उठाया। अब आप क्रांति के नेता बनकर इसे उठा लीजिये। हम लोग आपके सिपाही बनेंगे।

नया-कॉलेज के शिक्षकों-विद्यार्थियों के बीच
१९-१२-'५६

—जयप्रकाश नारायण

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

(विनोबा)

पुस्तक	मूल्य
गीता-प्रवचन	१)
शिक्षण विचार	१॥)
कार्यकर्ता-पाथेय	॥)
त्रिवेणी	॥)
विनोबा-प्रवचन (संकलन)	॥।)
भगवान् के दरबार में	=)
साहित्यिकों से	॥)
गाँव-गाँव में स्वराज्य	=)
पाटलिपुत्र में	।-)
सर्वोदय के आधार	।)
एक बनो और नेक बनो	=)
गाँव के लिए आरोग्य योजना	=)
भूदान गंगा (भाग पहला)	१॥)
भूदान-गंगा (भाग दूसरा)	१॥)
भूदान गंगा (भाग तीसरा)	१॥)
भूदान-गंगा (भाग ४-५)	प्रेस में
जन क्रांति की दिशा में	।)
हिंसा का मुकाबला	≥)
व्यापारियों का आवाहन	=)
ज्ञानदेव-चिन्तनिका	॥।)
चुनाव	=)

(धीरेन्द्र मजूमदार)

पुस्तक	मूल्य
शासन मुक्त समाज की ओर	।=)
नयी तालीम	॥)
ग्रामराज	।)

(श्रीकृष्णदास जाजू)

पुस्तक	मूल्य
संपत्तिदान यज्ञ	॥)
व्यवहार शुद्धि	।=)

(दादा धर्माधिकारी)

पुस्तक	मूल्य
मानवीय क्रांति	।)
साम्ययोग की राह पर	।)
क्रान्ति का अगला कदम	।)

(अन्य लेखक)

पुस्तक	मूल्य
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	।)
श्रमदान	।)
विनोबा के साथ	१)
पावन-प्रसंग	॥)
भूदान-आरोहण	॥)
गोसेवा की विचारधारा	॥)
गाँव का गोकुल	।)
भूदान दीपिका	=)
भूदान यज्ञ : क्या और क्यों ?	१)
छात्रों के बीच	।-)
सामाजिक क्रान्ति और भूदान	।-)
गांधी : एक राजनैतिक अध्ययन	॥)
राजनीति से लोकनीति की ओर	॥)
सर्वोदय पद-यात्रा	१)
भूदान-गंगोत्री	२॥)
क्रांति की राह पर	१)
क्रांति की ओर	१)
सर्वोदय भजनावलि	।)
भूमि-क्रांति की महानदी	॥।)
सत्संग	॥)
सुन्दरपुर की पाठशाला	॥।)
ब्याज-बट्टा	।)
पावन-प्रकाश (नाटक)	।)
नक्षत्रों की छाया में	१॥)
आठवाँ सर्वोदय-सम्मेलन	१)
क्रांति की पुकार	≥)
पूर्व बुनियादी	॥)
मजदूरों से	=)
सर्वोदय-दर्शन	(प्रेस में)